UNIVERSAL
LIBRARY
OU_178959
UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No. H81·6 S61 na

Accession No. GH 2302

Author शिवप्रसाद सिंह

Title नदी किनारे

This book should be returned on or before the date last marked below.

मान मण्डल सं० १

नदी किनारे

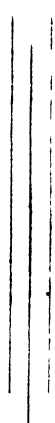

शिशुपाल सिंह

प्रकाशकः—
मारवाड़ी नवयुवक मण्डल
मारवाड़ी बाजार
हैदराबाद (दक्षिण)

सं० २००४ प्रथम संस्करण

मूल्य ३)

मुद्रकः—
शुक्ल प्रिंटिंग प्रेस
डा० देशमुख लेन
बम्बई ४

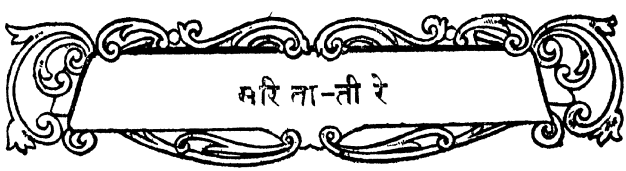
मरि ता-ती रे

सरिता-तीरे

[१]

तुम कहते हो, 'कवि क्यों गीतों को गाया करता है' ?
ऐसा कहने से पहले थल, जल, आकाश निहारो
अधिक नहीं तो उनके दृश्यों पर कुछ दृष्टि पसारो
भू-तल पर क्यों ललित द्रुमाली
नव-पल्लव लाती है ?
खग-दल उससे क्यों करता है बातें ? तनिक विचारो
सुरभित-सुमन-समूह सदा क्यों
मुसकाया करता है ?
अलि मतवाले स्वर में सरगम क्यों ला[illegible] करता है ?
सब को हर्षाया करता है
तब बतलाऊँ 'कवि क्यों गीतों को गाया करता है'।

२

जल-प्रपात की ओर निहारो क्यों बहता रहता है ?
नीचे गिर गिर कर चोटों को क्यों सहता रहता है ?
सरिता क्यों अविराम-प्रगति से
नित्य बही जाती है ?
क्यों उसका प्रवाह प्रति पल 'कल कल' कहता रहता है ?
सारी सरिताओं को अन्तिम
शरण जहां मिलती है—
वही अपार अथाह उदधि क्यों लहराया करता है
लहरों में गाया करता है
तब बतलाऊँ 'कवि क्यों गीतों को गाया करता है ?

३

नभ पर देखो 'रवि क्यों स्वर्णिम-किरणें विकसाता है ?'
चन्द्र दूधिया-धारों से क्यों जग को न नहलाता है ?
घोर अमावस में भी तारों
का दल क्यों हँसता है ?
पावस में क्यों मेघ फुहारों को लेकर आता है ?
यही कहोगे सब स्वभावतः
कार्य किया करते हैं
कवि भी उसी प्रकार काव्य-रस बरसाया करता है
जी को बहलाया करता है
स्वयं समझ लो 'कवि क्यों गीतों को गाया करता है'।

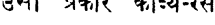

[२]

जी में आता है कुछ गाऊँ

१

माना, मौन सुखद है जैसा
मुख-प्रद नहीं बोलना वैसा
पर, उर की उठती उमंग को किस विधि से समझाऊँ
जी में आता है कुछ गाऊँ

२

कोयल बोल रही मधु-वन में
मधुकर मत्त हुआ गुंजन में
मैं मुखरित-भावों का कैसे उल्लंघन कर जाऊँ
जी में आता है कुछ गाऊँ

३

जग न सुने तो क्या चिन्ता है ?
अपना प्रेमी तो सुनता है
क्यों न उसी अन्तर्यामी को अपने गान सुनाऊँ
जी में आता है कुछ गाऊँ

—:०:—

[३]

कवि की कठिनाई को केवल कवि ही जान सकेगा

१

पलकों पर बेसुध-निद्रा के मदिर-भार को धारे
सोते हैं जब निशि में अवनीतल के प्राणी सारे

कविता-कामिनि-कान्त न तब
सपनों में खो जाता है

तारों के सँग जगता है, खोले नयनों के तारे

यों विराम को सिरहाने धर
साधन रत रहता है

उसकी जागरूकता को कब जग पहचान सकेगा
केवल कवि ही जान सकेगा

कवि की कठिनाई को केवल कवि ही जान सकेगा

२

पढ़ने वाला जिन छंदों को क्षण में पढ़ जाता है
अपनी ना समझी से केवल जी को बहलाता है

उसे ज्ञात क्या ? उन छंदों की
रचना करने वाला

कितने पहरों की बलि देकर उसको रच पाता है

यद्यपि उन पहरों की रचना
युग युग तक रहती है

पर, उसके अनुभव में अज्ञों का अनुमान थकेगा
केवल कवि ही जान सकेगा

कवि की कठिनाई को केवल कवि ही जान सकेगा

३

हंस-वाहिनी की अनुकम्पा जिस पर हो जाती है
उसके निकट उलूक-वाहिनी प्रायः कम आती है
इस प्रकार आर्थिक अभाव का
सूनापन रहता है
वाणी का ही अर्थ सदा शीतल करता छाती है
निर्धनता से कलाकार को
फिर भी दुख होता है
किन्तु मदान्ध कुबेर भला कब दुख को मान सकेगा
केवल कवि ही जान सकेगा
कवि की कठिनाई को केवल कवि ही जान सकेगा

०:—:०

[४]

गीत तुम्हारे कंठ तुम्हारा

१

किस पौरुष पर गर्व करें हम
लेकर अहम् स्वयं हम हैं कम
जो कुछ भी है तुम से ही है पाए पूर्ण-सहारा
गीत तुम्हारे कंठ तुम्हारा

२

पहले भी तुम ही गाते थे
विविध-स्वरों को सरसाते थे
श्रवण-भान से पृथक नहीं था कुछ अस्तित्व हमारा
गीत तुम्हारे कंठ तुम्हारा

३

उसी भांति अब स्वर उपजा कर
उर-तंत्री के तार सजा कर
हमें निमित्त-मात्र ही कर के गालो गायन प्यारा
गीत तुम्हारे कंठ तुम्हारा

[५]

चलो घूम आयें नदी के किनारे

१

वहाँ पर हमें प्यार बहता मिलेगा
न कोई कहीं शोक सहता मिलेगा
विकलता--भरे-प्राण की सान्त्वना को
सलिल, शब्द 'कल-कल' के कहता मिलेगा
यहाँ से वहाँ हैं सभी दृश्य न्यारे
चलो घूम आयें नदी के किनारे

२

दिवाकर तरल-ताप खोता वहीं है
निशापति कलंकों को धोता वहीं है
वनों उपवनों के भ्रमण से श्रमित हो
पवन भी सरस--चित्त होता वहीं है
तरंगों में रंगों के हैं ढंग प्यारे
चलो घूम आयें नदी के किनारे

३

वहाँ पत्थरों से नहीं धार रुकती
निरन्तर-प्रगति की नहीं शक्ति चुकती
सदा भाव स्वच्छन्द स्वीकार करके
कभी आपदा के है आगे न झुकती
रुके क्यों रहे मन हमारे तुम्हारे
चलो घूम आयें नदी के किनारे

४

सुभट मांझी पतवार लेता मिलेगा
प्रबल-धार में नाव खेता मिलेगा
इधर से उधर पार को जाने वाला
पथिक—दल शुभाशीष देता मिलेगा
तरेंगे सभी एक ही के सहारे
चलो घूम आयें नदी के किनारे

५

वहाँ भोले सारस के जोड़े मिलेंगे
जगत की जो चिन्तायें छोड़े मिलेंगे
अवनि और नभ के दुबीचे में पड़ कर
तुम्हें ऐसे निश्चिन्त थोड़े मिलेंगे
रसिकता के गुण होंगे सिकता में सारे
चलो घूम आयें नदी के किनारे

—:०:—

[६]

खेल रहे थे दो भोले शिशु हिलमिल नदी-किनारे

१

'लाली' कहती थी 'मुनुआँ' से, "आओ भैया ! आओ
जल पर सहज तैरने वाली नैया एक बनाओ
उभय-तटों ने जैसे निज में
एक प्रवाह बहाया
त्यों ही यहां परस्पर सुख का स्वर्गिक-स्रोत बहाओ
मैं थोड़ी सी मिट्टी लेकर
पुतला एक बनाऊं
उसे तुम्हारी नैया, नदिया के उस पार उतारे
कहते थे यों दो भोले शिशु हिलमिल नदी-किनारे

२

'मुनुआँ' ने कोरा कागज ले नाव रची मन-भाई
'लाली' ने भी झटपट तट से मिट्टी तनिक उठाई
और उसे जीवन कहलाने
वाले जल से साना
फिर देकर आकार मनोरम मूरति एक बनाई
यों क्रीड़ा के भाव हो गये
कार्य-रूप में परिणित
चलने लगी नाव पानी में उस मूरति को धारे
खेल रहे थे यों भोले शिशु हिलमिल नदी किनारे

३

अधिक समय तक किन्तु नीर में चली न नाव निराली
गली तुरत ही, घुली साथ में मूरति मिट्टी वाली
उनके यों आकार बिगड़ते
देख हँस पड़ा 'मुनुआँ'
खेल बिगड़ता देख रो उठी विलख विलख कर 'लाली'
मैं उनके हँसने रोने पर
लगा सोचने जी में—
'हँसने के मधु-क्षण सच्चे हैं अथवा आँसू खारे'
खेल चुके बस दो भोले शिशु हिलमिल नदी किनारे

०:—:०

[७]

होती यदि एक न धारा तो दो पार कदापि नहीं होते

१

अज्ञात- प्रेरणा से प्रेरित हो कर जो पाता संबल है
अपने अभीष्ट तक जाने को उत्सुक जिसका अन्तस्तल है
अब वही बटोही असमय में
रुक गया किनारे पर आ कर
नौका या सेतु न पाने से पल पल पर होता विह्वल है
उस अविरल चलने वाले का
पहले कुछ बश चल पाता तो
धारा को भू पर चलने के अधिकार कदापि नहीं होते
होती यदि एक न धारा तो दो पार कदापि नहीं होते

२

यों तो गतिवान बना पंथी जिस अपरम्पार धरातल पर
उस पर ही जल की अगम-राशि बह रही निरंतर 'हरहर' कर
पर, सूक्ष्म - दृष्टि से दृष्टि- कोण
दोनों को तनिक परखने से
प्रत्यक्ष दीखने लगता है गति के उद्देश्यों में अन्तर
उद्देश्यों के अन्तर से ही
हो गया उपस्थित संघर्षण
असमानों में समानता के व्यवहार कदापि नहीं होते
होती यदि एक न धारा तो दो पार कदापि नहीं होते

३

क्षण-भर को भी न ठहर कर के, करके अपनी ही मनमानी
गहरी-खाई सी भरे हुये जाता है तो जाये पानी
राही ही कैसे रुक जाये
उसने भी मानस उँमगाकर
उस पार लक्ष्य तक जाने की है कठिन ठान मन में ठानी
सच्चे साधक के साधन में
बाधक क्या बाधा लायेगा ?
दृढ़ता से किये हुये साधन निस्सार कदापि नहीं होते
होती यदि एक न धारा तो दो पार कदापि नहीं होते

[८]

आओ हिलमिल आनंद करें, तुम नदी बनो मैं नाव बनूँ

१

पार्थक्य-प्रथाओं में पड़ कर क्यों व्यर्थ व्यथाओं को झेलूँ
शीतल-हिम-बिन्दु तिरष्कृत कर क्यों जलते अंगारे ले लूँ
युग-युग से झुलसे मानस की
सीमाधिक-तपन बुझाने को
अब क्यों न सलिल पर लहराती सुकुमार तरंगों से खेलूँ
लोकोत्तर--लीलाओं में ही
शिशु के समान तल्लीन रहूँ
तुम मां की कोमल-गोद बनो, मैं शैशव का प्रिय-चाव बनूँ
आओ हिलमिल आनन्द करें, तुम नदी बनो मैं नाव बनूँ

२

यदि कभी मूढ़ता-वश तुमको तजने की दुर्मति अपनाऊँ
आगे पीछे का ध्यान न कर मन इधर-उधर को बिचलाऊँ
तो दायें जाकर टकराऊँ
बायें जाकर भी टकराऊँ
जा सकूँ कहीं न, तुम्हारी ही रोकों में प्यार सरस पाऊँ
उस समय युगल-कूलों वाले
अनुकूल बन्धनों को लेकर
तुम रस के सफल-स्वभाव बनो मैं विष का विफल-प्रभाव बनूँ
आओ हिल मिल आनंद करें, तुम नदी बनो मैं नाव बनूँ

३

जीवन के पहले पहरों में जब घोर घिरी थी अँधियारी
तब मेरी छोटी नौका पर कुछ आ बैठे पत्थर भारी

उनके बोझों अब मुझे डुबा
दोगे तो हानि नहीं होगी
तुम में ही पूर्ण समाने का मैं हो जाऊँगा अधिकारी

अन्तिम अभिलाष यही तो है
जो किसी तरह पूरी तो हो—

तुम चिर-गम्भीर समाधि बनो, मैं लय होने का भाव बनूँ
आओ हिल मिल आनंद करें, तुम नदी बनो मैं नाव बनूँ

[६]

ओ नैया को पार लगाने वाले !
बैठे हो क्यों पतवार हाथ से डाले !

१

मैंने माना, करके अपनी मनमानी
नभ-मण्डल में घनघोर घटा घहरानी
पर, उसके गर्वीले--गर्जन के आगे
कब रुका सहम कर तीव्र-धार का पानी ?
तुम भी हो पानीदार कहाने वाले !
बैठे हो क्यों पतवार हाथ से डाले ?

२

तड़िता की तड़पन हड़प पाया बादल
गम्भीर-सिंधु से बुझ न सकी बड़वानल
आश्चर्य ! तुम्हारी आत्म-ज्योति पर फिर क्यों—
यों पानी फेर रहा है सरिता का जल ?
तुम अपनी लौ से लपट उठाने वाले
बैठे हो क्यों पतवार हाथ से डाले ?

३

यदि कर्म-क्षेत्र में विघ्न आड़े आयें
तो कर्मठ कैसे वीर-बली बन पायें ?
सच पूछो तो पुरुषार्थ तथा साहस का—
सीमाधिक मोल बढ़ाती हैं बाधायें
तुम तुमुल-तरंगों पर जय पाने वाले
बैठे हो क्यों पतवार हाथ से डाले ?

४

कर्मठ का क्षण भी एक श्रेष्ठ-तम समझो
कादर का चिर-जीवन अधमाधम समझो
मरना ही है तो क्यों न अभयता पूर्वक
दिन एक और सौ वर्ष एक सम समझो
तुम तो थे औरों को समझाने वाले
बैठे हो क्यों पतवार हाथ से डाले ?

५

यदि वक्ष-स्थलमें साहस का संचय है
तो साधन मिल जाने पर जय ही जय है
तुम पर बाहें, पतवार और नौका है
उस पार पहुँचने में फिर क्या संशय है
साधन से साहस सफल बनाने वाले
बैठे हो क्यों पतवार हाथ से डाले ?

६

लहरें कितनी ही नौका से टकरायें
झंझायें कितनी ही सर पर मँड़रायें
पर सावधान ! सांसें उर की धड़कन में
अकुलाहट की आहट न कहीं कर पायें
तुम धीरज भरी मलार सुनाने वाले
बैठे हो क्यों पतवार हाथ से डाले ?

७

प्रभु से न विनय यह करो मौन-आहों में:—
" हे नाथ ! न आयें विघ्न कभी राहों में "
यह कहो:—" विघ्न आते ही हैं तो आयें
बस, आप हमें दें शक्ति युगल-बाहों में "
प्रभुवर हैं सब की टेक निभाने वाले
बैठे हो क्यों पतवार हाथ से डाले ?

०:—:०

[१०]

खड़े न हो, चढ़ती नदिया के कटते हुये कगारे पर

१

जल टकराने से "छप छप" सुन, होता है उल्लास तुम्हें
" नित्य यही उल्लास रहेगा " ऐसा है विश्वास तुम्हें

किन्तु प्रखरतर धार निरन्तर
तीर कतरती जाती है

क्या आंखों से नहीं दीखता है कगार का नाश तुम्हें?

अपनी ना समझी को समझो
झट पट पीछे हटो ! हटो !

कब तक टिक सकते हो ऐसे मिटते हुए सहारे पर?
खड़े न हो, चढ़ती नदिया के कटते हुए कगारे पर

२

सम्भवतः मँझधार सदा से तुम ने भीषण मानी है
जिस में अमित भँवर पड़ते हैं, अतिशय गहरा पानी है-

भांति भांति के हिंसक जल चर
गहराई में रहने से

तट से दूर भयंकरता की खानि नहीं अनुमानी है

भ्रम में हो मँझधार अकेली
भय से भरी नहीं होती

कभी कभी भय का ताण्डव है होता ठीक किनारे पर
खड़े न हो चढ़ती नदिया के कटते हुए कगारे पर

३

एक वृक्ष, कल इसी कूल पर गर्वित शीश उठाये था
प्रौढ़–परिस्थिति कर लेने को गहरी जड़ें जमाये था

अपने सँग अनगिन दल लेकर
अति ऊँची शाखाओं से

अखिल–गगन के हथियाने को अपने कर फैलाये था

आज समूल उखड़ कर जल में
गिर कर बहता चला गया

पानी ही फिर गया घमंडी के आयोजन सारे पर
खडे न हो चढ़ती नदिया के कटते हुए कगारे पर

—:०:—

[११]

बालू की भीत उठाना यदि मूर्खता नहीं है तो क्या है ?

१

भू-धरका संग छोड़ कर कुछ पाषाण रूठ कर बह आये
धक्कों पर धक्के खाये पर, ईर्ष्या का फल न समझ पाये
टेढ़ी-मेढ़ी गति--विधियों में
भीषण-संघर्षण लिये रहे
हो गये असंख्यों कण तन के, इतने आपस में टकराये
उन बिखरे पड़े कणों से यों
अपनी दीवाल बनाने की-
ललचा कर आस लगाना यदि मूर्खता नहीं है तो क्या है ?
बालू की भीत उठाना यदि मूर्खता नहीं है तो क्या है ?

२

हाँ, नदी-किनारे पर जैसे खेला करते हैं बालक-गण
हो कर सविनोद, बनाते हैं मन-भाये-मन्दिर-कोट-भवन
वैसे रेती की भीतों पर
कोई छत भी रख ले तो क्या
कर्तव्य-कर्म के अर्थों से होते हैं भिन्न मनोरंजन
पर अनासक्ति को भूल वहां
ममता-युत हो कर रहने का
उर में विचार उपजाना यदि मूर्खता नहीं है तो क्या है ?
बालू की भीत उठाना यदि मूर्खता नहीं है तो क्या है ?

३

पर्वत के अपर-सहोदर बन, जो खड़े कगार निराले थे
ऊँचे ऊँचे प्रासादों को नीचा दिखलाने वाले थे

उत्तुंग---शृंग धारण कर के
करते थे नित नभ से बातें

अपने शरीर में भीम–तुल्य दृढताओं के प्रण पाले थे

दुर्द्धर्ष--धार के धक्कों से
वे भी हो गये धराशायी

उन से कुछ सीख न पाना यदि मूर्खता नहीं है तो क्या है ?
बालू की भीत उठाना यदि मूर्खता नहीं है तो क्या है ?

[१२]

जी में आता है, इठलाती कल्लोलिनि का कल-गान बनूँ

१

'कल कल' रव को स्वीकृत कर के स्वर्गिक-स्वर लहरी में झूलूँ
भावों की मदिर--तरंगों में सुख के अन्तस्तल को छू लूँ
अपनी ही धुनि की धारा में
बेसुध विभोरतायें पाऊँ
भू-तल नभ-तल से दबा हुआ जग का सब कोलाहल भूलूँ
किन्नरियां-परियां आ आ कर
गा गा कर मृदु--मनुहार करें
बलिहार करें गीताञ्जलियां ऐसी लोकोत्तर तान बनूँ
जी में आता है इठलाती कल्लोलिनि का कल-गान बनूँ

२

मधु-वन की पिकियों के स्वर को मधुराई का मृदु-दान करूँ
सम्मान करूँ अपने पन का पंचम तानों पर मान करूँ
यों जीवन की गाथाओं में
अध्याय जोड़ लूँ एक नया
आमोदों और प्रमोदों से मन की गहरी पहचान करूँ
पल पल पर पुलकाकुल हो कर
प्राणों के पंछी चहक उठें
कलिकायें खुल कर महक उठें ऐसा नव-स्वर्ण विहान बनूँ
जी में आता है, इठलाती कल्लोलिनि का कल-गान बनूँ

३

पर उसी समय अन्तस्तल में यह भी विचार उठ आता है
"कवि अपने युगका प्रतिनिधि है अपने युगका निर्माता है

आंसू की धारा से जिन के
ओठों की है मुसकान धुली

उनकी दयनीय दशा पर वह निज अंतस चीर दिखाता है"

"स्वान्तः सुखाय" गाने पर भी
युग की पुकार सुन पड़ती है

तब सुनी अनसुनी करके मैं किस विधि से बहरे कान बनूँ
जी में आता है दुखियों के दु.खों का अन्तस-गान बनूँ

[१३]

किसी पुजारी ने पूजा कर पुष्प बहाये पानी में

१

व्यस्त-हृदय का चित्र लिये हैं कुछ बिखरी पंखड़ियों में
कुछ मुरझाये बहे जा रहे दुख की अन्तिम घड़ियों में

कोई अपने भग्न-भाग्य की
टेढ़ी रेखायें ले कर

मूक बह रहे हैं माला की टेढ़ी मेढ़ी लड़ियों में

मनोवेदना कह कर भारी
जी कुछ हलका कर लेते

यदि हम सा अधिकार कहीं वे पाये होते वाणी में
किसी पुजारी ने पूजा कर पुष्प बहाये पानी में

२

कुटिल-कंटकों से घिर कर भी निशि-दिन मुसकान वाले
प्यासे-मधुपों के मानस में मधु--रस ढुलकाने वाले

डाली के सुहाग को अपना
शुभ-सिन्दूर समर्पित कर

उस के यौवन में स्वर्णिमता के अवसर लाने वाले

हा ! अब मधु-मय मंजुलता के
रह न सके हैं उदाहरण

खारे आंसू लिये हुए हैं अपनी करुण-कहानी में
किसी पुजारी ने पूजा कर पुष्प बहाये पानी में

३

तितली की रंगरेली छूटी, छूटा भौंरे का गुन्जन
मलय-पवन की लोरी छूटी, छूटा प्यार भरा उपवन
सब कुछ छूट गया है केवल
दुर्गति से सम्बन्ध रहा
हाय ! हाय ! रे वरदानों के लोभ-भरे निष्ठुर-पूजन
स्वार्थ--वेदिका पर निबलों की
कब तक ऐसी बलि होगी
जाने कब प्रतिबन्ध लगेगा मानव की मनमानी में
किसी पुजारी ने पूजा कर पुष्प बहाये पानी में

:०—०:

१४

बहने की चाह नहीं हमको फिर भी जाने क्यों बहते है

१

जिनको हम बहुत दुलारे थे वे सभी किनारे पर छूटे
जो हमें बहुत ही प्यारे थे, वे सभी किनारे पर छूटे

इसको अपना दुर्भाग्य कहें
अपना दुर्दिन का फेर कहें

जो सुख-सौभाग्य हमारे थे, वे सभी किनारे पर छूटे

वे चल कर हम तक आ न सके
हम रुक कर उन तक जा न सके

जी भर कर मिलना हो न सका, परवशता इसको कहते हैं
बहने की चाह नहीं हमको फिर भी जाने क्यों बहते है

२

उभरे-अक्षर सी कभी कभी लहरावलियां उठ आती हैं
तट के अटूट-बन्धन पाकर सर पटक पटक रह जाती हैं

केवल उतार की ओर वक्र—
पथ में बहने की आज्ञा है

उसमें भी भूल भुलैयां फिर जाने कितना भरमाती हैं

जीवन—प्रवाह पाषाणों से
टकराकर क्रन्दन करता है

शत्रु को न सहने पड़ें कभी जैसे संकट हम सहते हैं
बहने की चाह नहीं हमको फिर भी जाने क्यों बहते हैं

३

जिस उद्गम से थे बहे यहां से जाने कितना ऊँचा है ?
बह कर जायेंगे जहां, यहां से जाने कितना नीचा है ?

कितना अब तक बह चुके और
कितना बहने को शेष रहा ?

अथ से अभीष्ट तक यात्रा की मात्रा क्या है ? गणना क्या है ?"

बस इन्हीं समस्याओं में फँस
मस्तिष्क हमारा व्यस्त हुआ

समुचित सुलझाव न पाने से मन-प्राण भ्रमित-से रहते हैं
बहने की चाह नहीं हमको फिर भी जाने क्यों बहते हैं ?

:१—०:

१५

जाने क्या क्या भेद छिपा है चंचल-मौन-तरंगों में

१

जाने कैसी हवा लगी है पल पल में इठलाती है
जल की निर्मल-कोमलता पर नृत्य-कला दिखलाती है
मध्य-धार की गहराई के
सिर पर अपने पग धरकर
इस तट से उस तट को निर्भय-गति से चलती जाती है
एक पथिक शंकित मुद्रा ले
इसी पार है खड़ा हुआ
उससे कुछ संकेत कर रही हैं निज-चपल-उमंगों में
जाने क्या क्या भेद छिपा है चंचल मौन तरंगों में

२

सहज-भाव से शांत-सलिल के समतल से उठ आती हैं
एकाकार मंच के ऊपर विविधाकार बनाती हैं
जिस प्रकार फिर कार्य स्वतः ही
कारण में लय होता है
त्यों सब लीलायें समेट कर जल में लय हो जाती हैं
कभी प्रकट में क्रीड़ा नर्तन
कभी गुप्त में सुप्त-दशा
यों उत्पत्ति-प्रलय के अभिनय करती हैं निज ढंगों में
जाने क्या क्या भेद छिपा है चंचल मौन तरंगों में

३

विश्व-प्रकाशक एक सूर्य को प्रियता से अपनाती हैं
ज्योतिर्मय प्रकाश से उसके विम्ब अनेक बनाती हैं

यद्यपि वह व्यापक-प्रकाश ले
सर्व समय में निश्चल है

पर अपनी हल चल से उसमें संचालन दरसाती हैं

मायावी की माया जैसे
खेल रचाया करती हैं

अंगी कार किये हैं वैसी माया अपने अंगों में
जाने क्या क्या भेद छिपा है चंचल मौन तरंगों में

धारा की डग मग लहरों पर किसने दीप बहाया ?

१

क्या अपराध किया था इसने ? यह तो था अति भोला
किसकी सुमन-सेज को इसने कंटक - दल से तोला ?
किसका बना बिगाड़ा ? किसका
गुप्त भेद कब खोला ?
किसके अमृत-कुण्ड में इसने घोर हलाहल घोला ?
कुछ त्रुटि ज्ञात न होने पर भी
पावन- अविकारी ने
नियति-न्याय की किस धारा से दंड भयंकर पाया ?
जाने किसने दीप बहाया ?
धारा की डगमग लहरों पर किसने दीप बहाया ?

२

कहीं पड़ी थी मैली - मिट्टी कण कण में बिलखाती
कहीं पड़ी थी तापित- ज्वाला अपना उर दहकाती
कहीं पड़ा था तेल, कहीं पर
पड़ी हुई थी बाती
यों भौतिक-उपकरण जुटा कर दग्ध की गई छाती
पुनः अँधेरी सीमाओं से
घिरे अनिश्चित पथ - पर
विजातीयता के बहाव का धक्का गया लगाया
जाने किसने दीप बहाया ?
धारा की डगमग लहरों पर किसने दीप बहाया ?

३

लहरें लपक रही हैं ले कर लोलुप-सी जिह्वायें
हिंसक-जन्तु निगल जाने की रखते हैं इच्छायें
भीषण-भँवर पड़ रहे आगे
पीछे, दायें, बायें
ज्योति बुझाने को चलती हैं झोंकों भरी हवायें
ऐसी विषम-परिस्थिति पाकर
बुझने में अचरज क्या ?
जलते रहने में अवश्य ही है रहस्य-मय माया
जाने किसने दीप बहाया ?
धारा की डगमग लहरों पर किसने दीप बहाया ?

—(×)—

[१७]

जीवन के सोते ने बहना, जाने कब से आरंभ किया

१

कहते हैं पहले उद्गम में अपने पन को भिरमाये था
अस्थिरतायें विस्मृत करके सुस्थिरतायें अपनाये था

सम्पूर्ण दिशायें विदिशायें
जिसकी विशालता के इंगित-

कर नहीं सकीं ऐसा विस्तृत अपना आवास बनाये था

आधार न पाये था कठोर
आवरण न था सूना-सूना

भू पर नभ के नीचे रहना, जाने कब से आरंभ किया
जीवन के सोते ने बहना, जाने कब से आरंभ किया

२

आकार न होने से दैहिक—सन्तापों का न कहीं भय था
भौतिकता की भीतियां न थीं संत्रस्त न करता संशय था

दैव को सदैव सदय पा कर
चित सांसारिक—सुख के ऊपर

व्यापकता के उच्च—स्तर पर सच्चिदानन्द में तन्मय था

संकट की कटु परिभाषा का
एक भी शब्द था निकट नहीं

तीनों प्रकार का दुख सहना, जाने कब से आरंभ किया
जीवन के सोते ने बहना, जाने कब से आरंभ किया

३

पीछे क्या बातें बीत गई इसका किंचित भी भान न था
आगे क्या घटनाएं होंगी ? इसका अणुभर अनुमान न था

बस, महामौनता के विभोर
सर्वत्र रमा था वर्तमान

जाने आने वाले अतीत अथवा भविष्य का ध्यान न था

पर 'आज' रूप का मान न कर
कल के 'कल' को व्याकुल होकर

अस्फुट स्वर में 'कल कल' कहना जाने कब से आरंभ किया
जीवन के सोते ने बहना, जाने कब से आरंभ किया

—※—

[१८]

पर-हित में जीवन अर्पित कर सरिता की भांति उदार बनो

१

माना वह भोले सोतों का सर्वस्व हरण कर लाती है
उन को पीछे करके आगे अपना ही नाम चलाती है

पर कोई कह दे कभी एक
भी बूँद ग्रहण उसने की हो

लोकोपकार में सब कुछ दे केवल निमित्त बन जाती है

तुम सरल हृदय वाले हो तो
शीतल करुणार्द्रित-भावों से

सन्तप्त-पिपासित कंठों को जल दे कर पानीदार बनो
पर-हित में जीवन अर्पित कर सरिता की भाँति उदार बनो

२

अपनी गम्भीर सजलता से मलिनों के मन का मैल हरो
निर्मलता का देकर प्रमाण उज्वलताएं भरपूर भरो

जग को सुरभित करने वाला
कोई उपवन उन्मन देखो

तो उसे हरा कर देने को सिंचन में रंच न देर करो

जिन का सौभाग्य—गगन-काले
मेघों से कम्पित हो उनके

कम्पित अधरों तक आश्वासन पहुँचाने का उपचार बनो
पर-हित में जीवन अर्पित कर सरिता की भांति उदार बनो

३

पथ पर चलने वाले निर्बल राही के मत आड़े आओ
बेबस आ ही जाने पर कुछ मन में दुर्भाव न उपजाओ

गहराई पर गर्वित हो कर
उत्ताल तरंगाघातों से

लघु- तरणि डुबाकर पंथी को बेबस यम पुर मत पहुंचाओ

हां, कहीं कपिल के कोपों से
यदि भस्म सगर-सुत पाओ तो

उनको अनुप्राणित करने को सुर-सरि की पावन-धार बनो
पर-हित में जीवन अर्पित कर सरिता की भांति उदार बनो

—※—

[१६]

कब से प्रवाह में बहता हूँ ? कृपया यह मुझसे मत पूछो

१

हां, इतना बतला सकता हूँ, जब नभ को सूना-देश मिला
वायु को भटकना, पानी को तरलित होने का वेश मिला

अग्नि को दहकना, पृथ्वी को
मिट्टी - पत्थर का ढेर मिला

मेरे विराम को उसी समय बहने का कटु आदेश मिला

तुम सदय-हृदय हो तो मेरी
पर - वशता पर आंसू डालो

परवश हो कैसे रहता हूँ ? कृपया यह मुझसे मत पूछो
कब से प्रवाह में बहता हूँ ? कृपया यह मुझसे मत पूछो

२

अनिवार्य अटल आदेशों का पालन करना ही पड़ता है
अपने रीतेपन को ज्यों त्यों करके भरना ही पड़ता है

जीवन - नाटक के एक दृश्य
के जीर्ण - शीर्ण हो जाने पर

फिर से नवीनता लाने को बेबस मरना ही पड़ता है

यों चाहो तो मेरी सारी
विपदाओं की संख्या सुन लो

पर, उनको कैसे सहता हूं ? कृपया यह मुझसे मत पूछो
कब से प्रवाह में बहता हूं ? कृपया यह मुझसे मत पूछो

३

रमणीय इन्द्र-धनु-सी मोहक अति रंग-विरंगी क्रीड़ायें
मादकता के आकर्षण में सब दूर हटाकर व्रीड़ायें
दिखला कर अपना इन्द्र जाल
पल भर को मोहित-सा करके
युग-युग से देती आती है मेरे प्राणों को पीड़ायें
वे कम होंगी सहने से ही
कहने से कम न कभी होंगी
फिर भी तुमसे क्यों कहता हूँ ? कृपया यह मुझसे मत पूछो
कब से प्रवाह में बहता हूँ ? कृपया यह मुझसे मत पूछो

[२०]

जीवन की व्याकुल-यमुना को देखूँ कब सुर-सरि-धार मिले

१

सुर-सरिता ने जिस हिम-गिरि से अपना धवलित बहना पाया
मेरी यमुना ने उससे ही पाई अपनी निर्मल काया

पर, मेरे पिछले कृत्यों से
जिनका इतिहास न याद रहा—

काया की शुचिता पर छाई अपराधों की श्यामल-छाया

अब उनके प्रायश्चित्तों में
आंसू की धार बहाता हूँ

सम्भव है, इस प्रक्षालन से कुछ निर्मलता का सार मिले
जीवनकी व्याकुल-यमुना को देखूँ कब सुर-सरि-धार मिले

२

छाया के पड़ने से पहले सुरभित मोहन-माला डाले
जड़-जंगम को मुखरित करते आते थे डिंग मुरली वाले

अब कपट-प्रलोभन दे दे कर
भोली मन-मीन फँसाने को

चुप ताक लगाते आते हैं तट पर अनगिन वंशी वाले

ऐसी विषमावस्था पा कर
ईश्वर से यही मनाता हूँ

कपटी-आकर्षण से मेरे भोलेपन को निस्तार मिले
जीवन की व्याकुल-यमुना को देखूँ कब सुर-सरि-धार मिले

३

सपने में चाह नहीं मुझको इन्द्रासन का अनुराग मिले
सपने में चाह नहीं मुझको अलका का अमर सुहाग मिले

सुर-पुर का मिलना भी क्या कुछ
अनुपम निधियों का मिलना है

मिलने का हो सौभाग्य मिले तो लक्ष्य-स्वरूप प्रयाग मिले

जिस ठौर कि यमुना गंगा से
संगम कर गंगा हो जाये

सारा कलंक धुल जाने पर परमोज्ज्वलता का प्यार मिले
जीवन की व्याकुल-यमुना को देखूँ कब सुर-सरि-धार मिले

[२१]

मँझधार भयंकर से मुझको कब पार करोगे ओ माँझी !

१

उस पार पहुँचने की इच्छा का भार उठाये है जीवन
जीवन का भार धरे है मन, मन का गुरु-भार धरे है तन

तन का सब बोझ तरणि पर है
जिसने जल में आधार लिया

पर, वास्तव में तुम पर ही है सम्पूर्ण-तरणि का भार-गहन

उसके बहते जाने पर भी
अपनी धुनि में तुम बहते हो

उत्तरदायित्व निभा कर कब उद्धार करोगे ओ माँझी !
मँझधार भयंकर से मुझको, कब पार करोगे ओ माँझी !

२

जाने कितने युग बीत गये तुम इसी घाट पर खेते हो
परमाकुल नौकारोही को करुणा का परिचय देते हो

भँवरों से तुमुल-तरंगों से
भयभीत नहीं होने देते

पतवार हाथ में लेते ही सब व्याकुलता हर लेते हो

यों पार उतारे हैं इतने
जितने न बिन्दु हैं धारा में

क्या मुझसे ही निर्ममता का व्यवहार करोगे ओ माँझी !
मँझधार भयंकर से मुझको कब पार करोगे ओ माँझी !

२

हाँ, तुमने वह मेरा काला इतिहास पढ़ लिया है अघ-मय
सम्भवतः इस कारण से ही यों उदासीन कर लिया हृदय
कृपया उसको विस्मृत कर दो
"मैं कैसा हूँ" यह मत सोचो
'मेरे संग में क्या करना है" इसका बस शीघ्र करो निश्चय
यदि आश्रित के अपराधों को
तुम क्षमा नहीं कर पाओगे
तो स्वयं 'पतित--पावन' पद का संहार करोगे ओ मांझी !
मझधार भयंकर से मुझ को कब पार करोगे ओ मांझी !

:०*—*०:

(२२)

धारा की अविराम-प्रगति में बहता जाता है कोई,

१

यह उस मानव का पुतला है जो चावों से पलता है
यह उस मानव का पुतला है जिस का प्यार मचलता है
यह उस मानव का पुतला है
जो कुछ वैभव पाने से
इठला कर ऐसे चलता है मानो भूमि कुचलता है
किन्तु नियतिके नियत-नियम ने
आज चराचर के सम्मुख
उस की गतियों में मति ला कर सारी मत्सरता खोई
धारा की अविराम प्रगति में बहता जाता है कोई

२

सेतु बंधा कर इस ने वश में कितनी धारें की होंगी
बेबस दे कर राह उन्होंने भी मनुहारें की होंगी
पर विधि ने इसके विपक्ष में
अपना न्याय किया होगा
विजय-हार से वंचित कर के अन्तिम हारें की होंगी
इसी लिये तो लहरें ठोकर
पर ठोकर हैं मार रहीं ,
इस की स्वाभिमानता फिर भी अपमानित होकर सोई
धारा की अविराम-प्रगति में बहता जाता है कोई

३

औंधे मुँह हो कर बहने का क्यों यों ढंग किया धारण
बात बहुत ही साधारण है फिर भी किन्तु असाधारण

"विफल रहा जिस जग से वह जग
उसका मुँह न निहार सके
वह भी जग का मुँह न लखे" यह है औंधे मुँह का कारण

जगती की उस ममता को अब
आँख उठा कर क्या देखे
जो उसके वियोग में केवल ऊपर मन से ही रोई
धारा की अविराम-प्रगति में बहता जाता है कोई

०:—:०

[२३]

पवन ! तुम हौले बहो, मेरी नैया लगे उस पार

१

सांसें ले ले मैंने तुम को किया हृदय से प्यार
अब झकझोरे देना ही है क्या उसका प्रतिकार ?

पवन ! हौले बहो
मेरी नैया लगे उस पार

२

तुम आते हो तो आते हैं झोंके विविध प्रकार
आता तभी कलेजा मेरा मुँह को बारम्बार

पवन ! तुम हौले बहो
मेरी नैया लगे उस पार

३

मैंने माना कि है तुम्हारा बलशाली-व्यवहार
पर इस समय समाधि-श्वास सा करो शान्त-व्यवहार

पवन ! तुम हौले बहो
मेरी नैया लगे उस पार

४

यदि सौभाग्य-समान न होओ तुम मेरे अनुसार
तो दुर्भाग्य-तुल्य भी मुझ पर करो न बज प्रहार

पवन ! तुम हौले बहो
मेरी नैया लगे उस पार

५

मदमाते के यौवन-सी है उमड़ रही मँझधार
किसी दुखी के भग्न-हृदय-सी टूटी है पतवार
पवन ! तुम हौले बहो
मेरी नैया लगे उस पार

६

तट पर रुके बिकल-पथिकों की सुनी न करुण पुकार
उन पिछली भूलों का ही तो लदा हुआ है भार
पवन ! तुम हौले बहो
मेरी नैया लगे उस पार

७

अब तक केवल मिट्टी ढोई, मिला न कुछ भी सार
बड़े पुण्य से आज मिलेगा, चिर-स्वर्णिम-उपहार
पवन ! तुम हौले बहो
मेरी नैया लगे उस पार

—०—

[२४]

और बहेंगे कब तक ?

अब हम और बहेंगे कब तक ?
कोई हमें बता दे अब हम और बहेंगे कब तक ?

१

"मिट्टी का आधार मिला है, मिटने वाला मैला
चलने को पथ विषम मिला है, काँटों भरा बनैला
चारों ओर क्षितिज का गूँगा
घेरा पड़ा हुआ है
चोटिल अंगों-सा नीला हो शिर पर अम्बर फैला
यों दुख के दल के दल दल में
बेबस हमें फँसा कर
क्या न बहाने वाले के मन की हो पाई अब तक ?
अब हम और बहेंगे कब तक
कोई हमें बता दे अब हम और बहेंगे कब तक

२

आकुल होकर अन्तस्तल ने जब अन्तर्मुख खोला
आकुलता से गहन-प्रश्न का उठने लगा फफोला
तो उसके उत्तर में उत्तर—
दक्खिन, पूरब, पच्छिम,
ऊपर, नीचे अन्तरिक्ष में कोई कहीं न बोला
मानों भू, नभ, रवि, शशि, तारे
सारे प्रश्न बने थे
गूँज रहे थे शब्द हमारे अन्तर के उन सब तकः—
"अब हम और बहेंगे कब तक-
कोई हमें बता दे अब हम और बहेंगे कब तक ?"

३

पड़े अचानक कर्ण-कुहर में तब ये शब्द सुनाई:
"कब तक और बहेंगे ? ऐसी आकुलता क्यों आई ?
अपने लिये बहो न, विश्व को
निज प्रवाह दे डालो
निस्पृह-क्रिया कभी कर्ता को दुःख नहीं दे पाई
'रही बात कब तक बहने की'
इसकी करो न चिन्ता
तब तक बहो, बहाने वाला तुम्हें बहाये जब तक,
न कहो, और बहेंगे कब तक ?
कौन बता सकता है तुमको और बहोगे कब तक ?"

—०—

[२५]

नाविक ! व्यर्थ न यों अकुलाओ
साहस से पतवार साधकर,बेड़ा पार लगाओ

१

मुख-मण्डल पर झलकाते हो कल्पित--आशंकायें
उनके झीने आवरणों में देख रहे बाधायें
उन्हें न देखो फिर वे देखें
कैसे तुमको दीखें ?
उनमें निज का दृश्य कहां ? जो तुमसे दृष्टि न पायें
उनकी अशुभ-सृष्टि का कारण
भीरु-दृष्टि होती है
अस्तु, अभय होकर निश्चय को कार्य-रूप में लाओ
नाविक व्यर्थ न यों अकुलाओ
साहस से पतवार साधकर बेड़ा पार लगाओ

२

यह क्या निश्चित है 'बाधायें सम्मुख आ ही जायें'
यदि आ ही जायें तो "यदि" का "तो" से उत्तर पायें
यह भी कोई विद्वत्ता है
वे तो निकट न आयें
प्राण तुम्हारे उनके मिथ्या-चिन्तन से अकुलायें
यों भविष्य के कोरे पट पर
भय के चित्र न खींचो
वर्तमान का सदुपयोग कर निज पौरुष प्रकटाओ
नाविक ! व्यर्थ न यों अकुलाओ
साहस से पतवार साध कर बेड़ा पार लगाओ

३

सुनो एक 'शिशु' को कल मैंने अपने पास बुलाया
पूछा—"मुनुआं, बोलो उठना किसने तुम्हें सिखाया
तुम तो नन्हें हाथ उठा कर
तनिक उचक पाते थे"
बोला 'मुझको गिर-गिर करके ही है उठना आया'
मांझी ! तुम शिशु नहीं युवक हो
अपने को पहचानो
उस भोले शिशु के शब्दों से कुछ तो आगे जाओ
नाविक व्यर्थ न यों अकुलाओ
साहस से पतवार साध कर बेड़ा पार लगाओ

[२६]

बड़े वेग से मरु-थल को चल पड़ी एक जल की लघु-धारा

१

अपनी लघुता तथा मरु-स्थल की विराटता विस्मृत करके-
लोकोत्तर-साहस से गति में शक्ति उत्तरोत्तर भर-भर के-
दिनकर की दाहक लूकों से
जो दुखिया-कण दहक रहे थे
उन बेचारों का करुणा से प्लावित-चित्र हृदय में धर के—
चली गई हां, चली गई वह
छोड़ व्यक्ति-गत आमोदों को
गिरि के शीतल अन्तस्थल में दीखी उसे घिनौनी कारा
बड़े वेग से मरु-थल को चल पड़ी एक जल की लघु-धारा

२

उसको आता हुआ देख कर रुद्र-कोप-सी मरु की ज्वाला
अट्टहास कर उठी पहन कर अंगारों की प्रज्वलित-माला
किन्तु भयंकरता के आगे
भद्र-भाव भयभीत नहीं था
अट्टहास से छोड़ लिये था मुसकानों का रूप निराला
यों अपना कर्तव्य समझ कर
जल ने उस जलने वाले को
भरसक शीतलता देने में लगा दिया निज जीवन सारा
बड़े वेग से मरु थल को चल पड़ी एक जल की लघु-धारा

२

यद्यपि लघु--बलिदान ताप में पूरी कमी नहीं कर पाया
तप्त बालुका में ही उसकी लुप्त हो गयी शीतल काया
पर बलि के हँसते बीजों पर
कोई आंच नहीं आ पाई
उस आहुति ने सोतों, झरनों, धाराओं का उर उकसाया
फिर क्या था चल पड़े सभी वे
उस आदर्श-वाद के पीछे
पानी फेर दिया मरु-थल पर बना दिया नन्दन वन प्यारा
बड़े वेग से मरु-थल को चल पड़ी एक जल की लघु-धारा

—※—

(२७)

जग में रहना ही कितना है !
ओ अचेत मन ! चेत, जगत में रहना ही कितना है !

१

दुख के आ जाने पर तू रह रह कर अकुलाता है
हां, सुख के आ जाने पर पल पल में पुलकाता है
दुख का अतिथि कदापि न तुझसे
हा ! आदर पाता है
किन्तु, मित्र सुख का भी तुझ को तज कर हट जाता है
यों तू दुख का मिलन और
सुख का न विरह सहता है
सह ले कुछ क्षण का जीवन है सहना ही कितना है
जग में रहना ही कितना है
ओ अचेत मन ! चेत, जगत में रहना ही कितना है

२

मैं ने माना तेरी जीवन-धारा है दुखियारी
ऊबड़--खाबड़ विषम—पथों से बहती है बेचारी
यही नहीं, मुँह बाये सम्मुख
खड्ड पड़े हैं भारी
पर, अपनेपन से भर कर तू कर दे उन्हें सुखारी
अश्रु बहा कर, आगे बहने
से रुकना अनुचित है
बह ले कुछ क्षण का जीवन है बहना ही कितना है
जग में रहना ही कितना है
ओ अचेत मन ! चेत, जगत में रहना ही कितना है

३

बाढ़े कितनी ही आये पर अट्टहास मत करना
'हर हर' का रव करके हरि को कभी न विस्मृत करना
पथ, टेढ़ा हो, चाल वक्र हो
पर न कुटिल जल करना
तप्त महीतल की छाती को निशिदिन शीतल करना
निठुर---पत्थरों से टकराकर
छोड़ न 'कल कल' कहना
कह ले कुछ क्षण का जीवन है, कहना ही कितना है !
जग में रहना ही कितना है
ओ अचेत मन ! चेत, जगत में रहना ही कितना है !

:०—०:

[२८]

नदी यदि बहे न तो क्या करे?

१

गिरि के सात्विक अन्तस्तल से जब भू-तल पर आई
रजोमयी-भावना त्रिमलता से तुरन्त लपटाई
एक धरा की व्यापकता पर
दो कर दिये किनारे
'उनमें द्वैत, स्वयं में बन्धन' ऐसी कुमति कमाई
अब लहरावलियों मिस दायें
बायें शीश पटक कर
उन्हीं किनारों के घेरे में रहे न तो क्या करे?
नदी यदि बहे न तो क्या करे?

२

सूखे रज-कण जिनकी काया युग युग से झुलसानी—
मन माना जल सोख सोख कर करते हैं मन मानी
किरणों की डोरों से रवि के
उर की आग उतर कर
गहराई तक घुस घुस करके पीती है नित पानी
इस प्रकार शोषित हो होकर
बिन वाहन बिन पग के
भूलों के परिणाम घसिट कर सहे न तो क्या करे?
नदी यदि बहे न तो क्या करे?

३

दोनों कूलों पर मलियानिल के झोंके जब डोले,
मुसकानें वितरण करने को सुमनों ने मुँह खोले
तब निर्जनता में उनकी मृदु
मनुहारें करने को
विविध-स्वरों में मुखरित हो कर विहंगों के दल बोले
पर न दुखी के दग्ध-हृदय से
पूछी बात किसी ने
अपने सूनेपन से 'कल कल' कहे न तो क्या करे ?
नदी यदि बहे न तो क्या करे ?

—※—

[२९]

इस पार हमारे आंसू हैं, उस पार तुम्हारे आश्वासन !

१

यों तो उर ने धीरज पाया पहले से शिक्षा-दीक्षा में
फिर भी वह कब तक सांसें ले आशा से भरी प्रतीक्षा में
आश्वासन की तो अवधि सदा
सीमित होना ही समुचित है
द्रौपदी-चीर करके उसको मत डालो कठिन परीक्षा में
क्यों नहीं जानते हो जब तुम
कह देते हो "हां आते हैं"
तब तुम्हें न आता देख यहां कितना हो उठता है क्रंदन !
इस पार हमारे आंसू हैं उस पार तुम्हारे आश्वासन

२

अवरुद्ध-कंठ की हिचकी जब उस तट से जा टकराती है
तब अपने संग कराह भरी दयनीय प्रतिध्वनि लाती है
पर, तुम कगार की ओट किये
जाने क्यों छिप कर बैठे हो
आने की घड़ी नहीं आती तो क्या न दया भी आती है
मंजुल-मिलाप से यदि विलाप
हरने में देर लगाते हो
तो मिलने की आतुरता को कम से कम दे ही दो दर्शन
इस पार हमारे आंसू हैं उस पार तुम्हारे आश्वासन

३

सोचो, इन विकल आंसूओंका कारण क्या है ? तुमसे बिछुड़न
तुम से बिछुड़न करने वाले वे कौन ? दो तटों के दो तन
दो तट हो जाने का कारण
हाँ, बहने वाली धारा है
पर धारा का भी सर्व प्रथम तुमने ही तो था किया सृजन
हम से रहने को दूर दूर
सारी रचनाएं रच बैठे
कुछ भी हो मृदु आलिंगन बिन धारण न करेंगे अब जीवन
इस पार हमारे आंसू हैं उस पार तुम्हारे आश्वासन

(३०)

अपनी ही धुनि में बहती हो तुम मन मोहन की मीरा-सी

१

राणा की रोकों के समान पाषाण मिले जो भी पथ में
वे कर न सके कुछ परिवर्तन निश्चय से भरे मनोरथ में
निश्चय में परिवर्तन करना
कुछ हंसी नहीं कुछ खेल नहीं
इति तक जाने के लिये अथक संकल्प हो चुका जब अथ में
कुल की संकुचिता--लज्जा--सी
घाटी की रोक नहीं मानी
मिलनातुर भावावेशों से बनती ही गई अधीरा-सी
तुम मन मोहन की मीरा-सी
अपनी ही धुनि में बहती हो तुम मन मोहन की मीरा-सी

२

विष के प्यालों से भी लम्बे चौड़े गहरे जो खड्ड मिले
उन को निहार कर साहस के दृढ़-अंग कभी न हिले, न हिले
उन की सूनी कटुता पीकर
अपना अपनत्व उँडेल दिया
यों खेल किया बाधाओंसे मानस के मंजुल-कंज खिले
जीवन दाता की भेंट-तुल्य
तुम मर्त्य लोक को प्राप्त हुईं
धरती के धूल भरे तन पर आभा दरसाई हीरा-सी
तुम मन मोहन की मीरा-सी
अपनी ही धुनि में बहती हो तुम मन मोहन की मीरा-सी

३

वन-माली के अन्वेषण में पगली बन कर वन वन घूमीं
पथरीली और कँटीली वे पथ की सब विपदायें चूमीं
उस समय तुम्हारे मतवाले
भावों से परम - प्रभावित हो
वन-माला- सी वृक्षावलियां तट के ढिंग आ आकर झूमीं
तुम आहों और कराहों को
निज - चाहों के नीचे करके
अपनी राहों को लिये बढ़ीं दृढ़- शक्ति - शालिनी- वीरा- सी
तुम मनमोहन की मीरा-सी
अपनी ही धुनि में बहती हो तुम मनमोहन की मीरा-सी

—*—

[३१]

सरिते ! मेरे आकुल आंसू उस सागर तक पहुंचा देना

१

जिस तक जाने को बड़ी बड़ी धारायें भी अकुलाती हैं
छाती के बल रेंगती हुई अविराम - प्रगति से जाती हैं
मिलने से प्रथम भटकने के
शापों से मुक्ति नहीं पातीं
संगम होने पर शान्त-भाव को हृदयंगम कर पाती हैं
तुम तो उस तक हो पहुंच चुकी
तुम - सा सौभाग्य सभी का हो
करुणा कर के मेरे प्रति भी थोड़ा-सा कष्ट उठा लेना
सरिते ! मेरे आकुल आंसू उस सागर तक पहुंचा देना

२

कह देना ' दो सावन-भादों मरुथल में रोया करते हैं
बिन बादल अविरल झड़ियों से मुख-मण्डल धोया करते हैं
विह्वलता का बाहुल्य उन्हें
पल भर को चैन नहीं देता
तड़िता-सी तड़पन लिये हुये नित धीरज खोया करते हैं
अति दूर क्षितिज के पार तुम्हें
बेचारे देख नहीं पाते
पलकों के दुहरे-बन्धन के सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना देना
सरिते ! मेरे आकुल आंसू उस सागर तक पहुँचा देना

३

यह भी कह देना "जीवन का अवशेष लिये हैं" ये आंसू
विरहानल पिये हुये जल के लघुवेश लिये हैं ये आंसू
अपनी विपरीत परिस्थिति से
सर्वथा ऊब जाने वाले –
मिलनातुर मानस के गीले संदेश लिये हैं ये आंसू
इतना कहने पर भी तुमसे
कुछ और अधिक पूछा जाये
तो मुझे देख ही चुकीं वहां जो समझो वह बतला देना
सरिते ! मेरे आकुल आंसू उस सागर तक पहुंचा देना

—०—

(३२)

उमड़ घुमड़ कर लहराने से कोई लाभ न होगा रानी

१

मदमाती गर्वीली चालें घोर अपावन पाप लिये
वसुधातल पर इठलाने से गंदलेपन की छाप लिये हैं
उन की बाढ़ों में तुम अपने
दूषित वैभव को न बढ़ाओ
बढ़ने के वरदान सदा ही घटने के अभिशाप लिये हैं
निर्मलता से संकरा सोता
बन कर बहना श्रेयष्कर है
मैले हो कर छहराने से कोई लाभ न होगा रानी
उमड़ घुमड़ कर लहराने से कोई लाभ न होगा रानी

२

मिट्टी के ढूहे घिस घिस कर क्या सोने से गोद भरोगी
मटमैली हो कर अपनी ही छवि का मटिया मेट करोगी
दर्पण की सी उज्ज्वलता से
हाथ विवश हो धो बैठोगी
मर्यादा के उल्लंघन का अपने सिर पर दोष धरोगी
मुसकाते मृदुलालापों को
अट्टहास में बदल रही हो
'कल कल' तज कर हहराने से कोई लाभ न होगा रानी !
उमड़ घुमड़ कर लहराने से कोई लाभ न होगा रानी !

३

तम से अमा डुबा देती है छोर दिशाओं के ज्यों सारे
त्यों ही कूल डुबाने के क्या जी में आये भाव तुम्हारे
भ्रम में हो धारा फैला कर
चाहे जितनी भूमि डुबाओ
पहुँच सकोगी जहां अन्त में निश्चय होंगे वहां किनारे
सागर के संगम से पहले
उनसे पिण्ड न छूट सकेगा
निज को असफल ठहराने से कोई लाभ न होगा रानी
उमड़ घुमड़ कर लहराने से कोई लाभ न होगा रानी

—००—

(३३)

सरिते ! केवल तुम्हीं नहीं हो बेबस चलने वाली

१

सब की चालों को पीछे से ठेल रहा है कोई
चलाचली के खेल निरन्तर खेल रहा है कोई
चलने के अनिवार्य कारणों
का कुछ पता न दे कर
सब ही में अविराम प्रगतियां मेल रहा है कोई
तुम जिस धरती के ऊपर दिन-
रात चला करती हो
दुहरी चालों के चक्कर में वही गई है डाली
सरिते ! केवल तुम्हीं नहीं हो बेबस चलने वाली

२

पवन चला करता है निशि दिन भर भर कर के आहें
उसे चला कर कौन न जाने पूरी करता चाहें
उधर सौर-मंडल में देखो
हलचल ही हलचल है
ग्रह, उपग्रह सब लिए हुए हैं अपनी अपनी राहें
शशि "घटने बढ़ने" के पथ में
चैन नहीं ले पाता
नित चलती फिरती रहती हैं तारों की दीवाली
सरिते ! केवल तुम्हीं नहीं हो बेबस चलने वाली

३

औरों के क्यों उदाहरण दूँ मति की नश्वरता से—
मैं ही बिछुड़ गया हूँ अपनी यति की सु-स्थिरता से

बैठा था अभीष्ट को पाये
चिन्ता सभी गँवाये

आज विवश हो सम्बन्धित हूँ भीषण अस्थिरता से

निठुर-निपति के मग पर डगमग
पग धरता जाता हूँ

जाने किस मुहूर्त में पी ली, गति-मदिरा की प्याली
सरिते ! केवल तुम्हीं नहीं हो, बेबस चलने वाली

०:—:०

[३४]

केवल मैं ही हूँ एकाकी कल्लोलिनि ! तेरे तट पर

१

विमल-वालुका ने अपने में अगणित सुन्दर कण पाये
जो कि दूर तक पड़े हुए हैं लम्बी चादर फैलाये
निर्मल-जल के तल पर भी हैं
खेल रही हैं अनगिन लहरें
जिन में नभ के रवि शशि तारे नित्य नहाने को आये
हां, संख्या में तट थोड़े हैं
पर वे भी हैं जोड़े में
वज्र अकेले पन का टूटा जाने क्यों मेरे ऊपर
केवल मैं ही हूँ एकाकी कल्लोलिनि ! तेरे तट पर

२

क्या बतलाऊँ, मैं, वह दोनों विचर रहे थे इस वन में
मैं "मैंपन" का वह "वहपन" का भाव न लाये थे मन में
दोनों मिलकर एक "बने" थे
ऐसा एक कि जो जग में
मूल-रूप से रमा हुआ है सर्व-प्राणियों के तन में
उस सोने के एक बिना अब
मैं मिट्टी का एक रहा
सो भी कम हो रहा निरन्तर अश्रुधार में घुल घुल कर
केवल मैं ही हूँ एकाकी, कल्लोलिनि ! तेरे तट पर

३

जब मैं उसको चला ढूँढ़ने अन्तर की हल चल लेकर
बन की लाली दौड़ी मुझ पर भीषण दानवता लेकर

इधर विरह के अग्नि-कुण्ड में
और अंगारे दहक उठे

दुहरी जलन न सह कर फिर मैं भागा उर विह्वल लेकर

नयनों के दोनों झरनों से
बुझा न पाया लपटों को

इस से शांति-हेतु कुछ तेरे तट पर आकर गया ठहर
केवल मैं ही हूँ एकाकी कल्लोलिनी ! तेरे तट पर

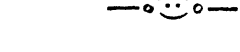

[३५]

ओ प्रवाह ! तुम नीर नहीं हो, अपने को पहचानो

१

यदि तुम होते नीर, तुम्हें भी लेते घेर किनारे
मिट्टी की सीमा में सहने पड़ते संकट सारे
पर, यह बात कहां ? तुम तो
स्वच्छन्द बहा करते हो
दोनों तट हो गए तुम्हारे मारे न्यारे-न्यारे
तुम उन पथिकों में हो जिनके-
पीछे पथ चलता है
अस्तु, स्वयं ही अपनी गति की अद्भुत महिमा पहिचानो
अब भी अपने को पहचानो
ओ प्रवाह ! तुम नीर नहीं हो अपने को पहचानो

२

यदि जल धोखे से भी अपने को प्रवाह कहता है
तो निश्चय ही ध्येय-धार में वह ऊँचा बहता है
प्रगति-शील होकर अपने को
यदि तुम जल कहते हो
तो न तुम्हारे उच्चाशय में कुछ प्रभाव रहता है
सच पूछो तो अबल, अचल जल
तुम से संचलित है
ढाल भूमि का, अपनेपन की एक भूमिका मानो
अब भी अपने को पहचानो
ओ प्रवाह ! तुम नीर नहीं हो अपने को पहचानो

३

हां, यह प्रश्न अवश्य सत्य है–"जी तुम नीर न पाते
तो फिर किस के द्वारा अपने बहने को प्रकटाते" ?

किन्तु उधर जल के सन्मुख भी
यही प्रश्न आता है

"तुम बिन उसके अंग किस तरह प्रगतिशील दिखलाते?"

तुम चेतन साकार हुये हो
जड़-जल को सँग ले कर

जड़–जल में तुम से विकास है, यही भावना ठानो
अब भी अपने को पहचानो

ओ प्रवाह ! तुम नीर नहीं हो अपने को पहचानो

—:०:—

(३६)

सरिते ! तुम को किन पापों से निर्धनता का परिणाम मिला

१

दिनकर किरणों से लहरों में नित सोना बरसाता आया
राकापति हँस कर चांदी की सुन्दर सुन्दर भेंटे लाया

तारे अनगिन मोती लाये
हीरे लाये, मणियां लाये

पर कंकड़, पत्थर, घोंघों के अतिरिक्त न तूने कुछ पाया

तेरा सौभाग्य अभागे-सा
घन-अन्धकार से ढँका रहा

यद्यपि निशि में चांदनी मिली दिन में सुखकाता घाम मिला
सरिते ! तुझको किन पापोंसे निर्धनता का परिणाम मिला

२

सलिले ! तुझको किन शापों से केवल जानेका काम मिला
तू गिरि मुखसे शब्द-सी निकल कर पीछे पुनः नहीं जाती
जो समय व्यतीत हुआ उसके सम जाकर पुनः नहीं आती

युवकों की बाल्यवस्था सी
अनिवार्य चली ही जाती है

वृद्धों की युवा-अवस्था-सी जीवन भर लौट नहीं पाती

जग में तो आने से जाना
जाने से आना होता है

प्रत्यावर्त्तन से हीन तुझे जाना ही क्यों अविराम मिला
सलिले ! तुझको किन शापोंसे केवल जाने का काम मिला

३

सजले ! तुझको किन तापों से पल भर को भी न विराम मिला
संध्या होने पर दिनकर ने अपने विश्रान्त-नयन मींचे
मारुत ने सारे दिन चलकर निज-श्वास थकावट के खींचे

पथ आमन्त्रण स्वीकार किये
जो चला जा रहा था पंथी

वह ठहर गया शिर की गठरी धर कर निज-प्राणों के नीचे

तरु छाया दिन भर घूम घूम
थक कर लम्बी हो लेट गई

तेरी धारा को तो भी हा ! पल भर भी कहीं न विश्राम मिला
सजले ! तुझको किन तापों से पल भर को भी न विराम मिला

—६—

[३७]

मत रुक मत रुक पाषाणों से
भयभीत न हो चट्टानों से
ओ ऊंचे पर्वत की जाई ! भयभीत न हो चट्टानों से

१

ऐसी चट्टानों के पत्थर
अपने में निष्क्रियता भर कर
तेरे उद्गम के चरणों पर
हैं पड़े हुए चिर-मूर्छित हो, चेतनता के अवसानों-से
मत रुक मत रुक पाषाणों से
ओ ऊंचे पर्वत की जाई ! भयभीत न हो चट्टानों से

२

यदि वीर मार्ग में बाधायें-
पाकर हेरें दायें बायें-
तो कैसे आगे बढ़ जायें
रोकें ही राहें बनती हैं साहस-शाली गति-वानों से
मत रुक मत रुक पाषाणों से
ओ ऊंचे पर्वत की जाई ! भयभीत न हो चट्टानों से

३

जब रोक सामने आती है
तो पहले अड़चन लाती है
फिर तीव्र - प्रवाह बनाती है
होती है पैनी धार सदा संघर्षण के पाषाणों से
मत रुक मत रुक पाषाणों से
ओ ऊँचे पर्वत की जाई ! भयभीत न हो चट्टानों से

४

निर्बल दुर्भाव भगा दे तू
कर्तव्य - प्रदीप जगा दे तू
अपने को पूर्ण लगा दे तू
निर्बल-कर्मठ को व्यापक- बल मिल जाता है बलिदानों से
मत रुक, मत रुक पाषाणों से
ओ ऊंचे पर्वत की जाई ! भयभीत न हो चट्टानों से

५

जिनका "करना" "होने" को है
"होना" युग युग "रहने" को है
तुझ को उन-सा होने को है
संसार करेगा याद उन्हीं की, श्रद्धा से सम्मानों से
मत रुक, मत रुक पाषाणों से
ओ ऊंचे पर्वत की जाई ! भयभीत न हो चट्टानों से

६

उत्साह स्वयं उत्सुक होकर
मारे कठिनाई में ठोकर
तब है विशेषता श्रेयष्कर
क्या मूल्य ? लिया उत्साह मोल वीरोंके विगत-प्रमाणों से
मत रुक, मत रुक पाषाणों से
ओ ऊंचे पर्वत की जाई ! भयभीत न हो चट्टानों से

७

तेरा प्रवाह रुक जायेगा
तो उंगली विश्व उठायेगा
जाने क्या क्या कह जायेगा
अपनेपन को दूषित मत कर अपवादों से, अपमानों से
मत रुक, मत रुक पाषाणों से
ओ ऊंचे पर्वत की जाई ! भयभीत न हो चट्टानों से

(३८)

बुझी न प्यास हमारी
तुम से बुझी न प्यास हमारी
अनगिन बार पिया जल तो भी गई न प्यास हमारी

१

हम ने समझा था "तुम ऊंचे भू-धर की हो जाई
उस के ऊंचेपन से गहरी अविरल-धारा पाई
सागर के रीतेपन को जब
नित्य भरा करती हो
तब इस मानस के भरने में तुम को क्या कठिनाई ?"
इस आशा से हमने निशि दिन
अपने को समझाया
किन्तु आज हो गई अचानक समझ निराश हमारी
तुम से बुझी न प्यास हमारी
अनगिन बार पिया जल तो भी गई न प्यास हमारी

२

परम तृषातुर हो कर जब हम आकुलता से भटके
देख तुम्हारे विज्ञापन को तट पर आकर अटके
जल के पीने की 'थकान' को
'कमी' जलन की गुन कर
लौट चले, पर तृषित हुये फिर तके आसरे तट के
यों लौटा फेरी में इतना
जीवन व्यर्थ गँवाया
पूर्ण-तृप्ति पा सकी न दुखिया झुलसी आस हमारी
तुम से बुझी न प्यास हमारी
अनगिन बार पिया जल तो भी गई न प्यास हमारी

३

अब हम समझे तुम्हें पूर्णता का तुम कोरा भ्रम हो
बहने की अविराम क्रिया का लिये निरन्तर क्रम हो
अरे क्रिया पूर्ण में नहीं, वह
है अपूर्ण में होती
औरों को क्या पूर्ण करोगी ? जब अपूर्ण हो, कम हो
अश्रु धार लेकर बन बन में
जिस को खोज रही हो
उस से ही पूरी हो सकती है अभिलाष हमारी
तुम से बुझी न प्यास हमारी
अनगिन बार पिया जल तो भी गई न प्यास हमारी

[३६]

ओ सागर भरने वाली ! मेरी गागर भरती जा

१

मेरी गागर को बाहर से घेरे है सूनापन
भीतर से करता सांय सांय रह रह कर रीतापन
कूप की तली से जल लाऊं
है पास न कोई गुण
इतनी ऊंचाई नहीं कि पालूँ नील—गगन के घन
तू अपने सरस विचारों से
तर करती है कण कण
मेरे ऊपर भी वैसी ही अनुकम्पा करती जा
मेरी गागर भरती जा
ओ सागर भरने वाली ! मेरी गागर भरती जा

२

इसके भीतर से रीतेपन की व्याधि नहीं छूटी
हां ! उसी लुटेरी दुष्टा ने ही सब गुरुता लूटी
रक्षा का कोई ठोस यत्न
जब ओट न कर पाया
इसकी काया तब अगम चोट से बार बार टूटी
यों रही अभावों की मारी
सूने पन से हारी
चिर जीवन दे इस के रीतेपन को अब हरती जा
मेरी गागर भरती जा
ओ सागर भरने वाली ! मेरी गागर भरती जा

३

तेरी धारा में कभी रही थी एक बूँद तन्मय
पाये थी सजाती पताका निशि दिन आनन्द निलय
फिर क्या जाने किस कारण
सौभाग्य हो गया क्षय ?
मिट्टी के घर में बन्द हुआ उसका स्वच्छन्द हृदय
तेरी धारा का विरह उसे
देता है भय पर भय
अब इसके शिर पर सजल हस्त करुणा का धरती जा
मेरी गागर भरती जा
ओ सागर भरने वाली ! मेरी गागर भरती जा

[४०]

यमुने ! याद है वह बात ?

१

जब तू नीर की ले भीर
बहती थी अगम गम्भीर
घन थे घोर चारों ओर भादों की अंधेरी रात
यमुने ! याद है वह बात ?

२

मन से मुखर, मुख से मौन–
तट पर दो रुके थे कौन ?
लख कर भीति से, न न भेद से परिपूर्ण जल-उत्पात
यमुने ! याद है वह बात ?

३

बन्दी शक्ति का था एक
बन्दी भक्ति का था एक
बेड़ी पहनता था एक पग थे एक के जलजात
यमुने याद है वह बात ?

०:—:०

[४१]

धुआँ उठा है नदी किनारे

१

किसी जननि के लाल दुलारे
किसी बहिन के भाई प्यारे
किसी वधू के एक सहारे आज हुये हैं जग से न्यारे
धुआँ उठा है नदी किनारे

२

चिता सुलगती है जलती है
कंचन की काया गलती है
धूमिल पथ से अन्तरिक्ष को शोभा के शृंगार सिधारे
धुआँ उठा है नदी किनारे

३

जीवन धारा बह जाती है
केवल मिट्टी रह जाती है
अपना-सा ही यह नाटक भी देख रहे हैं खड़े कगारे
धुआँ उठा है नदी किनारे

०:—:०

[४२]

नाविक ! मेरा कहना मान

१

नदिया नद-सी उमड़ रही है
घोर घटा भी घुमड़ रही है
ऐसे विषम-समय में नौका खोल न रे अनजान
नाविक ! मेरा कहना मान

२

थलमें हलचल, जलमें हलचल
अखिल गगन-मण्डलमें हलचल
मेरे मानस में खलबल है लखकर भीति महान्
नाविक ! मेरा कहना मान

३

सारा जग कर गया किनारा
यही किनारा रहा सहारा
इसे छोड़ कर संकट में क्यों डाल रहा तू प्राण
नाविक ! मेरा कहना मान

—:०*:०—

[४३]

नौकारोही ! मत अकुलाओ

१

नदी उमड़ती है तो उमड़े
घटा घुमड़ती है तो घुमड़े
देख किसी को सबल, सहम कर अपना बल न भुलाओ
नौकारोही ! मत अकुलाओ

२

मेरी यह पतवार प्रबल-तर
शासन करती है लहरों पर
इसकी पूर्ण सफलता के प्रति दृढ़-विश्वास बनाओ
नौकारोही ! मत अकुलाओ

३

कभी न कल से रहने वाला–
नित नीचे बहने वाली–
धार कहो, क्या कर सकती है ? उर में साहस लाओ
नौकारोही ! मत अकुलाओ

—:०:—

(४४)

क्यों न मुझे वह पार मिलेगा ?

१

जल से किंचित भय न किये हूँ
चार तत्व मैं अधिक लिए हूँ
क्या कर लेगा एक, चार का जब मिल कर उपचार मिलेगा
क्यों न मुझे वह पार मिलेगा ?

२

थल, नीचे नीचे इस तट से
बढ़ कर मिल बैठा उस तट से
इस से मेरी गति-विधियों को शिक्षा का उपहार मिलेगा
क्यों न मुझे वह पार मिलेगा ?

३

वीर-पाठ पढ़ने वाले को
साहस से बढ़ने वाले को
सर्व-शक्ति-शाली ईश्वर से बल भी अपरम्पार मिलेगा
क्यों न मुझे वह पार मिलेगा

—*—

(४५)

कहीं भी रहो प्रसन्न रहो

१

यदि पाटल-सा जीवन पाओ
तो न कण्टकों से अकुलाओ
मन्द मन्द विधि से मुसकाओ मुख से कुछ न कहो
कहीं भी रहो प्रसन्न रहो

२

यदि सरसिज-सम सर में डूबो
तो भी चित में नेक न ऊबो
हो आकण्ठ-मग्न तो क्या, नयनों में नीर न हो
कहीं भी रहो प्रसन्न रहो

३

यदि सरिता-सी हों द्विविधायें
तो मत देखो दायें बायें
बना रहे कूलों का बन्धन, तुम निर्द्वन्द बहो
कहीं भी रहो, प्रसन्न रहो

०:—:०

[४६]

ठहर रे मन ! तू अब भी ठहर !

१

इधर उधर के तज कर फेरे
सब पंछी ले चुके बसेरे
सब के स्थिर चित हुये निशा का पाकर पहला पहर
ठहर रे मन ! तू अब भी ठहर !

२

अब न पवन में "हहर हहर" है
होता कहीं न "फहर फहर" है
उसकी आंदोलित गतियों में शान्ति गई है ठहर
ठहर रे मन तू ! अब भी ठहर !

३

थम-सी गई नदी की धारा
सोया है हर एक किनारा
मीनों के मानस में भी उठ रही न कोई लहर
ठहर रे मन ! तू अब भी ठहर !

—०—

[४७]

वह चित्र बना दे चित्रकार
वह दृश्य दिखा दे कलाकार

१

जिसमें अरुणोदय सानुराग
भरता हो प्राची का सुहाग
सिन्दूरी-किरणों का स्वागत होता हो घर घर द्वार द्वार
वह चित्र बना दे चित्रकार

२

नीलम का नभ नीचे झुक कर
नम्रता दिखाता हो सुन्दर
करता हो क्षितिज बहाने से धरती के कण-कण से दुलार
वह चित्र बना दे चित्रकार

३

घासों के हरे बिछौने हों
खेलते मुदित मृग-छौने हों
पंछी वृक्षों पर करते हों जग के जग जाने की पुकार
वह चित्र बना दे चित्रकार

४

नदिया का सुघर किनारा हो
बहती निर्मल जल धारा हो
धारा पखारती हो तट की मर्यादा के पद बार बार
वह चित्र बना दे चित्रकार

५

लहरें अनेक लहराती हों
हिलमिल कर प्रेम बढ़ाती हों
टकराती हों न परस्पर वे, दरसाती हों नित मिलन प्यार
वह चित्र बना दे चित्रकार

६

नाविक प्रयत्न में चित्त दिये
उस तट को अपना लक्ष्य किये—
नौका को खेता जाता हो उर में भर कर साहस अपार
वह चित्र बना दे चित्रकार

७

जब चारों ओर अँधेरा हो
विघ्नों ने डाला डेरा हो
तब तेरा चित्र निहार शांति से अपना बेड़ा करूँ पार
वह चित्र बना दे चित्रकार

—०—

रि म झि म

रिमझिम

(१)

घन श्याम ! इधर कब आओगे ?

१

कितने हैं सूखे-क्षेत्र यहां
कितने हैं गीले-नेत्र यहां
यह बात बिना आये भगवन ! किस भांति समझ तुम पाओगे
घन श्याम ! इधर कबआओगे ?

२

"हलधर-दल" पर विपदा छाई
सुखिया के हैं दुखिया भाई
जीवन दाता ! कह दो कब तक, इन को यों ही तरसाओगे
घन श्याम ! इधर कब आओगे ?

३

तुम चाहे और चुनो 'हलधर'
पर, ये तुम पर ही हैं निर्भर
इन के हे देव अनन्य ! तुम्हीं सुरझे मानस लहराओगे
घन श्याम ! इधर कब आओगे ?

—(*)—

(२)

मेरे प्राण-पपीहे के घन श्याम ! कहां हो आओ

१

बन कर 'याद' वियोगी उर में तुम चुपचाप समाये
लोकोत्तर सुकुमार प्यार में अनगिन ज्वार उठाये
किन्तु तुम्हारे शुभ स्वागत में
पलक——पांवड़े ले कर
दोनों नयन, 'परस' तो दुर्लभ 'दरस' नहीं कर पाये
ओ सांवले-अतिथि ! पुतली की
इस एकान्त-निशा में
एकाकार-भाव-शय्या पर शयन करो, सुख पाओ
मेरे श्याम ! कहां हो आओ
मेरे प्राण-पपीहे के घनश्याम ! कहां हो आओ

२

मुझ पर मरु-थल नहीं विपुल-जल की जो चाहे धारा
मुझ पर उपवन नहीं फुहारों का जो तके सहारा
ऐसी कोई लता नहीं जो
सिंचने को कुम्हलाये
ऐसा मुझ पर सुमन नहीं जो हो प्यासों का मारा
मेरे आँसू नीर नहीं
जीवन-धन चाह रहे हैं
विकल सीप को स्वाँति-बुन्द के दो मोती दे जाओ
मेरे श्याम ! कहां हो आओ
मेरे प्राण-पपीहे के घनश्याम ! कहां हो आओ

३

व्याकुलता से मेरा चातक 'पिया पिया' चिल्लाया
इससे यह न समझ लेना 'यह सचमुच ही पी आया'

उद्वेगों की प्रबल-प्रेरणा
चाहे कुछ कहलाये
पागल-सा प्रलाप करवाती है वियोगिनी—माया

तुम बिन इसने अपना प्रतिक्षण
युग की भाँति बिताया
करुणा करके अब तुम इसके साहस को न थकाओ
मेरे श्याम कहां हो आओ
मेरे प्राण, पपीहे के घनश्याम! कहां हो आओ

(३)

छोटा सा बादल का टुकड़ा

१

आकार सिन्धु की आहों का
बन गया पथिक नभ- राहों का
अभिमानी के दुर्भावों, सा नभ - मंडल में उमड़ा घुमड़ा
छोटा- सा बादल का टुकड़ा

२

ले करके एक ससीम - लगन
दौड़ा नापने असीम - गगन
वायु का बना बन्दी तो भी दिखलाता आया रौब बड़ा
छोटा-सा बादल का टुकड़ा

३

फिर वही हुआ जो होना था
अपनी कुबुद्धि पर रोना था
पश्चातापी का आँसू बन धीरे से भू पर टपक पड़ा
छोटा-सा बादल का टुकड़ा

—:०:—

[४]

नभ में नीरद लहराता है

१

बिन यन्त्र स्वतन्त्र विमान बना
उपमा में भीम समान बना
वसुधा के ऊपर 'देव-वरुण' का उच्च-केतु फहराता है
नभ में नीरद लहराता है

२

उँमगा ज्वारों में किन्तु थका
भू का आधार न त्याग सका
अब शून्य-पंथ में पंख-रहित उड़ता सागर दिखलाता है
नभ में नीरद लहराता है

३

रवि ने प्रकटाया ताप घना
जल वाष्प हुआ अति सूक्ष्म बना
सूक्ष्मता-निरत कोई भी हो निश्चय ऊंचा उठ जाता है
नभ में नीरद लहराता है

०:—:०

[५]

घन ! भले रहे तुम उठ आये

१

तुम जहाँ सिन्धु में बैठे थे
आपत्ति-सिन्धु में पैठे थे
लहरों के संग विवश होकर बहुवार तटों से टकराये
घन ! भले रहे तुम उठ आये

२

केवल न तटों का था बंधन
पानी में भी था खारीपन
जल-जीवों से, जल-यानों से आलोड़ित हो हो अकुलाये
घन ! भले रहे तुम उठ आये

३

कोई क्या क्या दुख दमन करे
किन किन शोकों को शमन करे
सबसे अच्छा बस यत्न यही, 'आप ही दुखों से हट जायें'
घन ! भले रहे तुम उठ आये

०:—:०

[६]

घनघोर घटायें घिर आईं

१

उर की उमंग-सी उमड़ उठीं
घहराहट ले कर घुमड़ उठीं
क्षितिकी छतको आच्छादित कर छप्पर-सीछतरी-सी छाईं
घनघोर घटायें घिर आईं

२

सौन्धी सुगन्ध ले बहा पवन
विचलित कर कुछ कजरारे घन
जीवन-दायिनी साँसें पा कर घुँघराली अलकें लहराईं
घनघोर घटायें घिर आईं

३

पाँतों में शोभित बगलों ने—
(सांवली छटा के पगलों ने)
श्यामा को श्वेत मोतियों की मालायें उड़ कर पहनाईं
घनघोर घटायें घिर आईं

०—०—०

[७]

रिमझिम रिमझिम जलधर बरसे

१

तर हुई छतें आँगन भींगे
ऊपर नीचे कण-कण भींगें
ग्रीष्मासुर से शापित जग को बरदान मिले अमरेश्वर से
रिमझिम रिमझिम जलधर बरसे

२

क्रमशः बूदों का तार बढ़ा
जीवन दाता का प्यार बढ़ा
धरणी का जल-सम्बन्ध हुआ अम्बरगामी धाराधर से
रिमझिम रिमझिम जल धर बरसे

३

घंटे न घड़ी गिन कर बरसे
एक ही झड़ी दिन भर बरसे
घर झूम गये, कुछ लोट गये, अपने मन में इतने हरषे
रिमझिम रिमझिम जलधर बरसे

—०—

(८)

चपला ले घन छवि-धाम चले

१

ले हँसी सुभट गम्भीर चले
ले तीर–शिखा तूणीर चले
अपने उर में सु-स्फूर्ति लिये रण-बांके वीर ललाम चले
चपला ले घन छवि धाम चले

२

अनुरक्ति लिये अनुरक्त चले
आसक्ति लिये आसक्त चले
मोहनी-सनी मंजुलता ले जग के मन-मोहन काम चले
चपला ले छवि धाम चले

३

अग्नि की लपट ले नीर चले
शुद्धात्मा लिये शरीर चले
सीता को लेकर राम चले, राधा को लेकर श्याम चले
चपला ले घन छवि धाम चले

०:—:०

(६)

क्या इन्द्र-धनुष की छवि छाई

१

रवि ने जग की छत ऊँची से
निज रश्मि-राशि की कूँची से
अम्बरके पट पर चित्र-कला की सफल कुशलता प्रकटाई
क्या इन्द्र धनुष की छवि छाई

२

या कवि कविता का भाव-भवन
है खड़ा हुआ अनुपम बन ठन
वन्दनवारों से सजा उसी का द्वार दे रहा दिखलाई
क्या इन्द्र धनुष की छवि छाई

३

किंवा अलका की परियों ने
कोमल-वदना किन्नरियों ने
नीलम के छज्जे पर भीगी सतरंगी चुनरी फैलाई
क्या इन्द्र धनुष की छवि छाई

०:—:०

[१०]

ले कर हल बैल किसान चले

१

अपने को मोद विभोर किये
शुभ प्रेम-सूत्र की डोर लिये
पशुता- मानवता में मैत्री कर सात्विक-देव-विधान चले
लेकर हल बैल किसान चले

२

मिट्टी से सोना करने को
भूखों की ज्वाला हरने को
भारत-माता के मान चले, आरत-माता के प्राण चले
लेकर हल बैल किसान चले

३

मैले होकर भी निर्दोषी
निर्धन होकर भी संतोषी
सम्राटों को रोटी देने वाले दानी भगवान् चले
लेकर हल बैल किसान चले

—o—

(११)

केंचुए किधर हैं जाने को

१

निकले ले कर तन मटमैले
सिमटे, फैले, सिमटे, फैले
केंचुल के बदले लिये हुए केवल कीचड़ लपटाने को
केंचुए किधर हैं जाने को

२

बर्बर को डाट नहीं सकते
बिन दांतों काट नहीं सकते
अपने मुंह का अस्तित्व लिये चुप हो कर मिट्टी खाने को
केंचुए किधर हैं जाने को

३

हुंकार नहीं कर पाते हैं
फुंकार नहीं कर पाते हैं
पानी में पड़े निपनियां हो कालों का वंश लजाने को
केंचुए किधर हैं जाने को

—(×)—

(१२)

मेंढक "टर-टर" टरराते हैं

१

गरमी ने इन्हें हराया भी
भू-तल के तले दबाया भी
तो भी अपने को अपने से ये हारा हुआ न पाते हैं
मेंढक "टर-टर टरराते हैं

२

जिस भाँति धरा में पड़े रहे
मुरदे की नाईं गड़े रहे
अपनी बीती सारी विपदा वर्षा को आज सुनाते हैं
मेंढक "टर-टर टरराते हैं

३

कंठों में शब्द रसाल नहीं
संगीत नहीं स्वर-ताल नहीं
तो भी भारी कोलाहल कर वे सिर पर ताल उठाते हैं
मेंढक "टर-टर" टरराते हैं

—०—

[१३]

जुगनू भी बड़े निराले हैं

१

छिप गये घटाओं में तारे
घर में घुस गये दिये सारे
निशि के नयनों के तारे बन ये दिखला रहे उजाले हैं
जुगनू भी बड़े निराले हैं

२

हो नहीं सके तम के अर्पण
चिनगारी-से चमके क्षण क्षण
बहु-मत विपक्ष का विस्मृत कर अपना पुरुषार्थ सँभाले हैं
जुगनू भी बड़े निराले हैं

३

भय नहीं जलद की "झर झर" का
डर नहीं पवन की "सर सर" का
गीले झोंकों के सम्मुख भी दीपक ले चलने वाले हैं
जुगनू भी बड़े निराले हैं

[१४]

तब रोता है बन्दी-जीवन

१

जब सागर के प्रतिनिधि आकर
विस्तृत नभ-मण्डल में छा कर
अपने सीमित मापों से ही लेते हैं नाप असीम गगन
रोता है तब बन्दी-जीवन

२

जब हर्षित कृत्य-प्रदर्शन से
आकर्षित नृत्य-प्रदर्शन से
उपवन का होता है केकी, केकी का होता है उपवन
रोता है तब बन्दी-जीवन

३

जब तापित कुम्हलानी नदिया
रेखा-सी दुबलानी नदिया
बहती है कूल कगारों तक करके नद-का सा मद धारण
रोता है तब बन्दी-जीवन

—:०:—

[१५]

ओ मूढ़ ! मुनारे * के पत्थर

१

दो कृषक-सहोदर झगड़ पड़े
तुम तुरत खेत के बीच गड़े
द्वेष के भवन का शिलान्यास कर किए एक घर के दो घर
ओ मूढ़ ! मुनारे के पत्थर

२

वसुधा को लहराने वाले
अंकुर को उपजाने वाले
बूँदों के उज्वल भव्य-भाग्य हा ! फूट गये गिर कर तुम पर
ओ मूढ़ ! मुनारे के पत्थर

३

यदि कहीं देव-प्रतिमा होते
तो भक्त-पुजारी पग धोते
पूजन करते, अर्चन करते, वन्दन करते जी भर भर कर
ओ मूढ़ ! मुनारे के पत्थर

—०—

*हद बंदी के पत्थर को मुनारे का पत्थर कहते हैं।

(१६)

हम ने ऐसा सपना देखा

१

"कँचुए पद-दलित रह न सके
अनुचित दमनों को सह न सके
काले बन, अत्याचारी को झट से ही लिया उन्होंने खा"
हमने ऐसा सपना देखा

२

"रो रो कर फिरने वालों ने
नभ के पंथी घन-कालों ने-
भीषण वर्षण से धो डाला अपने दुर्भाग्यों का लेखा"
हमने ऐसा सपना देखा

३

भगवान करे सच सपना हो
प्रत्यक्ष प्रकट हो अपना हो
'जागरण-दिवस' के गीत लिखे, रजनी की यह स्वप्निल रेखा
हमने ऐसा सपना देखा

—०—

(१७)

क्या दृश्य मनोहर भाते हैं

१

गांवों में बेलें हारों-सी
फैली हैं बन्दनवारों-सी
सुख की सांसें ले ले कर तरु सुषमा के चंवर डुलाते हैं
क्या दृश्य मनोहर भाते हैं

२

खेतों में हलवाहे स्वर भर
आल्हा से चित आल्हादित कर
हल का श्रम हलका करने को लाखन का गौना गाते हैं
क्या दृश्य मनोहर भाते हैं

३

विपिनों में हरित बिछौने हैं
खेलते मुदित मृग—छौने हैं
अपनी "कुरंगता" से शोभा की भी शोभा सरसाते हैं
क्या दृश्य मनोहर भाते हैं

—×—

(१८)

यह पथिक नहीं रुकने वाला

१

विद्युत अपनी द्युति दमकावे
या घन-घूँघट में छिप जावे
इस का दृढ़-निश्चय किन्तु नहीं है संशय में लुकने वाला
यह पथिक नहीं रुकने वाला

२

जो अभी कर रहा मन-मानी
वह बन्द कभी होगा पानी
इस का साहस द्रौपदी-चीर सा कभी नहीं चुकने वाला
यह पथिक नहीं रुकने वाला

३

वृक्षों पर वह बूँदे छाई
डालें नीचे को झुक आईं
इस का उन्नत उद्देश्य लिये उर रंच नहीं झुकने वाला
यह पथिक नहीं रुकने वाला

—०—

(१६)

कृष्णाह्वान

१

कितने ही वसुदेव जटिल जेलों में पड़े हुए हैं
जीवन और मृत्यु वाले खेलों में पड़े हुए हैं
बँधी देवकी-सी बन्धन में दुखिया भारत-मैया
मुक्ति-लोक का द्वार दिखाते आओ कृष्ण-कन्हैया !

२

इस सिर पर जिस बांस-वंश की निष्ठुर-लाठी टूटी
और खोपड़ी वाली खाली प्याली जिससे फूटी
उसी बांस की बंशी लेकर आओ बंशी वाले !
मानव-ध्वनि से गुंजित कर दो क्या गोरे, क्या काले

३

इन्द्र-देव भीषण--वर्षण से बाढ़ें बढ़ा रहे हैं
लाखों जीवों के जीवन की भेंटें चढ़ा रहे हैं
हे गोवर्धन--धारी ! गिरिधर आओ जल्दी आओ
गो, गोपी, गोपाल बचाओ सब को सुख पहुंचाओ

४

आज रणाङ्गण में सब पाण्डव शस्त्र विहीन अड़े हैं
कवच पहन कर सत्य अहिंसा का जी खोल लड़े हैं
हे हे चक्र-पाणि ! भारत को समुचित नीति सिखाओ
पाञ्चजन्य के साथ समर में वेणु बजाते आओ

५

अखिल विश्व के मेरु-दण्ड सब कृषक कष्ट पाते हैं
भारी हल का बोझ उठाते, भूखे रह जाते हैं
रुद्र-दरिद्र-दशा से उनका दूर करो यह नाता
हलधर सुखी बनाने आओ, ओ हलधर के भ्राता !

६

'श्वेत' सुयश, 'हरे' नाम से 'पीत' वस्त्र से पाये
सुन्दर तीनों रंग हमारे झण्डे ने अपनाये
हे भारत के मित्र ! बनो अब भी भारत के संगी
भारत माता के मंदिर पर फहरे ध्वजा तिरंगी

७

मोहन ! आज तुम्हारा मोहन वृद्ध दधीचि बना है
उसके चारों ओर कार्य का जाला घना तना है
तुम योगेश्वर हो उसके तन मन को बल पहुँचाओ
विमल-प्रेरणा से गीता की कर्म-कथा समझाओ

०:—:०

उपवन में

उपवन में

यों ही जी बहला लेता हूं

१

खलने लगता लोकांत जभी
तकता हूँ बन-एकांत तभी
कोलाहल-पीड़ित मन को नीरवता से सहला लेता हूँ
यों ही जी बहला लेता हूँ

२

फिर पर्ण कुटी वाले सुन्दर
सुमनों को अपना सहचर कर
उनकी मधुरी-मधु-बूँदों से अपने को नहला लेता हूँ
यों ही जी बहला लेता हूँ

३

हाँ, तब उद्‌गार उमड़ते हैं
मानस के ज्वार घुमड़ते हैं
तो उन्हें मानवी भाषा में वाणी से कहला लेता हूँ
यों ही जी बहला लेता हूँ

—०—

[२]

उषा ने हँस कर खोला द्वार

१

तम के विकट कपाट जड़े थे
दिन मणि दूर अदृश्य पड़े थे
उनकी तेजस्वी किरणों का करने को विस्तार
उषा ने हँस कर खोला द्वार

२

नीरवता से दबी चेतना
पावे अधिक न व्यथा वेदना
इस से प्रकटित करने को उसके मुखरित-उद्गार
उषा ने हंस कर खोला द्वार

३

अति आनन्दी, स्वच्छन्दों का
प्रणयी-बन्दी, अलि—वृन्दों का
अरविन्दों के बन्दी-गृह से करने को उद्धार
उषा ने हँस कर खोला द्वार

—०—

(३)

ललाई छाई अम्बर में

१

चकवा चकवी के वियोग-सम
तारे होते जाते हैं कम
उनके दृश्यों ने अदृश्यता पाई अम्बर में
ललाई छाई अम्बर में

२

प्राची का सुहाग भरने को
उसकी मांग पूर्ण करने को
ऊषा शुभ-सिन्दूर विहँस कर लाई अंबर में
ललाई छाई अंबर में

३

तम का पटाक्षेप विनसाती
नैश-यवनि का उच्च उठाती
दिवस-मंच की नूतन-वेला आई अंबर में
ललाई छाई अंबर में

०:—:०

(४)

बड़े सबेरे श्यामा बोली

१

राग बिहाग भरे अंतर में
सोने लगी कुमुदिनी सर में
गाने लगी प्रभाती जगकर नीड़-वासिनी भोली
बड़े सबेरे श्यामा बोली

२

सुमनों को केवल निहार कर
उन्हें दूर से ही दुलार कर
मृदु-मधु से भी अधिक-मधुरिमा अपने स्वर में घोली
बड़े सबेरे श्यामा बोली

३

उसके जागृति के गाने को
महँका कर के फैलाने को
मलयानिल की सुरभित-लहरी मंथरता से डोली
बड़े सबेरे श्यामा बोली

०:—:०

(५)

हुआ प्राची का अंचल लाल

१

नभ-मानस के निखरे निखरे–
इधर उधर को बिखरे बिखरे–
मंजुल-मुक्ता बाल-हंस ने चुन डाले तत्काल
हुआ प्राची का अंचल लाल

२

शून्य केन्द्र पर वृत्त बना कर
किरणावलि का जाल घना कर
क्षितिज कोर को चीर सुनहला निकला सुन्दर थाल
हुआ प्राची का अंचल लाल

३

गिरे ओस के बिन्दु तृणों पर
वैभव लघुता के चरणों पर
पानीदार मोतियों से हैं निर्धन मालामाल
हुआ प्राची का अंचल लाल

—०—

(६)

हुआ प्राची का अरुणिम-भाल

१

तम में आग लगा देने को
सुप्त-प्रकाश जगा देने को
रोषित-मुद्रा लेकर प्रकटा परिवर्तन विकराल
हुआ प्राची का अरुणिम-भाल

२

भू-धर, वन, उपवन के प्रान्तर
सागर, सरित सरोवर निर्झर
सब पर लालामी का छाया एक प्रभाव विशाल
हुआ प्राची का अरुणिम-भाल

३

यों अन्धेर भगा देने को
जीवन-ज्योति जगा देने को
तू भी हो जा लाल अरे, ओ वन्दिनि मां के लाल !
हुआ प्राची का अरुणिम-भाल

—:*:—

(७)

जागो, जागो कुसुम-कुमार !

१

नभ ने मुक्ताओं की थाली
तुम पर न्यौछावर कर डाली
ऊषा ने दिखला कर लाली दरसाया निज मृदुल-दुलार
जागो, जागो कुसुम-कुमार !

२

ओस अ--दोष विमल-जल लाई
बदन तुम्हारा धोने आई
झलने लगी व्यजन सुखदाई शीतल-मन्द-सुगन्ध बयार
जागो, जागो कुसुम-कुमार !

३

चंचरीक भी चारण बन कर
'गुन गुन' गाने लगे मनोहर
करने लगे द्रुमों पर द्विजवर, मधु-स्वरों में जय जय कार
जागो, जागो कुसुम-कुमार !

—०—

(८)

पावन-पूजन का समय हुआ

१

सुख की सांसें ले बहा पवन
हो गये सुवासित बन उपवन
तब तक प्राची से तेजोमय भगवान-सूर्य का उदय हुआ
पावन-पूजन का समय हुआ

२

डालियां प्रेम में नहीं रुकीं
प्रभु के प्रणाम के लिये झुकीं
श्रद्धा से सिंचित-अंगों में संचारित अनुनय-विनय हुआ
पावन-पूजन का समय हुआ

३

ओस से सलिल अति स्वच्छ लिया
सब सुमनों ने आचमन किया
द्विज लगे प्रार्थनायें करने, सब ही का गद् गद् हृदय हुआ
पावन-पूजन का समय हुआ

—०—

(६)

दिन-नायक आने वाले हैं

१

ऊषा जिन का सन्देश लिये
आई थी स्वर्णिम-वेश किये
वे सोने की किरणावलियां भू पर बिखराने वाले हैं
दिन-नायक आने वाले हैं

२

पद्मिनी सरोवर - दर्पण में
छवि हेर रही है क्षण-क्षण में
उस के मिलनातुर-नयन नाथ का दर्शन पाने वाले हैं
दिन-नायक आने वाले हैं

३

सन्ध्या तक जो स्वच्छन्द रहा—
फिर पंखड़ियों में बन्द रहा—
उस अलि के कोमल और कठिन बन्धन खुल जाने वाले हैं
दिन-नायक आने वाले हैं

—०—

(१०)

पंछी ! रैन बसेरा छोड़ो

१

पंखों में उड़ान भरने को
दृष्टि कोण का मल हरने को
दिनकर का दर्शन करने को तम का घेरा छोड़ो
पंछी रैन बसेरा छोड़ो

२

अपने मुक्त वेश में विचरो
अतुल अनन्त देश में विचरो
तनिक-तनिक तिनकों से निर्मित सीमित-डेरा छोड़ो
पंछी रैन बसेरा छोड़ो

३

तुम्हीं अकेले उड़े, उड़े जब
नीड़ तुम्हारे संग उड़ा कब ?
असफलता से भरा यहां का "मेरा-तेरा" छोड़ो
पंछी रैन बसेरा छोड़ो

—०—

(११)

जुड़ने लगी भीड़ पनघट पर

१

कल सब गये यहीं से जल भर
ले आये फिर रीती गागर
इसी कूप का आश्वासन है चाहों के जमघट पर
जुड़ने लगी भीड़ पनघट पर

२

कोई पानी खींच रहा है
कोई आशा सींच रहा है
कोई जल उँडेलता कोई कहता है "झटपट कर—
—जुड़ने लगी भीड़ पनघट पर"

३

बांध गला नीचे लटकाया
कभी डुबाया कभी उठाया
जाने क्या क्या बीत रही है मिट्टी के लघु-घट पर
जुड़ने लगी भीड़ पनघट पर

—•—

(१२)

छुओ मत ये मोती सुकुमार

१

अलख - सीपियों के उपजाये
मुक्त-भाव से भू पर छाये
करते हैं उद्भासित उर का प्रेमाद्रित उद्गार
छुओ मत ये मोती सुकुमार

२

तुम्हें शपथ है अपनी रुचि की
कैसी यह भावना अशुचि की
विमल-प्यार को बना रहे क्यों लोलुप का व्यापार
छुओ मत ये मोती सुकुमार

३

सब के आनन्दों के साधन
कैसे सहें एक का बन्धन
उन्हें स्वार्थ-वश हथियाने का क्या हमको अधिकार
छुओ मत ये मोती सुकुमार

—•—

(१३)

पुजारी ! चरण पड़ूँ तेरे

१

माना, कि ये प्रसून चढ़ा कर
पूजन पूर्ण सफल होगा, पर—
डाली सूनी गोदी ले किन लालों को हेरे
पुजारी ! चरण पड़ूँ तेरे

२

इन्हें जगत सुरभित करना है
मधुपों की प्यासें हरना है
पर हित-कारी भाव घनेरे हैं इनको घेरे
पुजारी ! चरण पड़ूँ तेरे

३

पाने को वरदान किसी का
कर न कभी बलिदान किसी का
प्रभु तेरी सुन लेंगे तू सुन दीन-वचन मेरे
पुजारी ! चरण पड़ूँ तेरे

—०—

(१४)

चढ़ाऊँ किस पर अपने फूल

१

विज्ञापन का रूप नहीं है
मोहक-गँध अनूप नहीं है
यही हीनता हुई यहां पर इनकी भारी भूल
चढ़ाऊँ किस पर अपने फूल

२

लखकर छवि से शून्य-प्रदर्शन
हुई न प्रस्तर-मूर्ति मुदित मन
हाय पुजारी का अलि भी समझा पराग को धूल
चढ़ाऊँ किस पर अपने फूल

३

अरे चलूँ क्यों भरम गवाऊँ
उसी डाल से क्यों न लगाऊँ
जिससे सम्बन्धित है सारे जग का आश्रय-मूल
चढ़ाऊँ उस पर अपने फूल

—*—

(१५)

प्रभु ! तू मुझको फूल बना दे

१

जिनको घेरे विघ्न घने हों
पर सत्पथ के पथिक बने हों
मेरे मृदु-पराग को उनके पग की धूल बना दे
प्रभु ! तू मुझको फूल बना दे

२

कोई करे आक्रमण विष से
मैं उसका उत्तर दूँ रस से
प्रतिकूलों के प्रति भी मन को अति अनुकूल बना दे
प्रभु ! तू मुझको फूल बना दे

३

काँटे बेधें तो बिंध जाऊँ
हार न मानूँ हार बनाऊँ
याद रहें अपराध न उनके ऐसी भूल बना दे
प्रभु तू मुझको फूल बना दे

—०—

(१६)

पुष्प में पंखड़ियाँ थीं पाँच

१

सांचे में अतुलित कौतूहल
ढाँचे में अतुलित कौतूहल
जिज्ञासा ही वस्तु-स्थिति की कर पाई कुछ जाँच
पुष्प में पंखड़ियाँ थीं पाँच

२

बाह्यावरण ध्यान से देखा
अंतःकरण ध्यान से देखा
बाहर निरा असाँच मिला अंतर में केवल साँच
पुष्प में पंखड़ियाँ थीं पाँच

३

कुम्हलाने के कटु--क्षण पाकर
काल--केवल हो चला कलेवर
सुरभि शून्य में उड़ी, न आई उस पर किंचित आँच
पुष्प में पंखड़ियाँ थीं पाँच

—०—

(१७)

हँसी पँखड़ियां डंठल पर

१

उस को केवल एक समझ कर
निबल काठ की टेक समझ कर
अपने को जान कर विपुल-मात्रा में कोमलतर
हँसी पँखड़ियां डंठल पर

२

उसे मान कर नीच--निवासी
रूप--रंग से रहित उदासी
और जान कर अपने को अति ऊँचा अति सुन्दर
हंसी पंखड़ियां डंठल पर

३

लगा अचानक ऐसा झटका
पुष्प टूट कर उलटा लटका
तो भी डंठल ने साधा उन को अपना गुन कर
हंसी फिर कभी न वे उस पर

—o—

[१८]

सुमन ! मत कर मधु पर अभिमान

१

मधुपों को मत मान भिखारी
मेरे अहोभाग्य हैं भारी
सदा भिखारी ही देते हैं दाता को सम्मान
सुमन ! मत कर मधु पर अभिमान

२

जो कुछ यहां दिया जाता है
कई गुना हो कर आता है
देना तुझे सिखाने आई इन की मांग महान
सुमन ! मत कर मधु पर अभिमान

३

विश्व-नाथ से जो कुछ ले तू
उसे विश्व के हित में दे तू
बिना दिये भी छिन जायेगा क्षण में रे अनजान !
सुमन ! मत कर मधु पर अभिमान

—:०:—

[१६]

क्यों यों गर्व आप करते हैं

१

रज-कण दुखित पड़े हैं भू पर
सुख से आप डाल के ऊपर—
इतराने के, इठलाने के विविध-रूप धरते हैं
क्यों यों गर्व आप करते हैं

२

सुन्दरता सौरभ ऊँचापन
इनके ही हैं दिये हुये ऋण
बिना चुकाये ऋण, निजता के गौरव को हरते हैं
क्यों यों गर्व आप करते हैं

३

इन्हें न पग की धूल समझिये
अपनी भारी भूल समझिये
दुखियों के झरने ही सुखियों के सागर भरते हैं
क्यों यों गर्व आप करते हैं

—०—

[२०]

अरे गर्वीले नन्हें फूल !

१

दीन मधुप मधु पीने आये
तेरे रस से जीने आये
इन्हें विमुख लौटा देने से होगी भारी भूल
अरे गर्वीले नन्हें फूल !

२

यह वैभव है नहीं व्यष्टि का
वास्तव में है सब समष्टि का
जहां व्यक्तिगत-स्वार्थ अंकुरित हुआ वहीं है शूल
अरे गर्वीले नन्हें फूल

३

यदि आवश्यकता से वंचित—
करके, रक्खा जाये संचित
तो न पराग, पराग रहेगा हो जायेगा धूल
अरे गर्वीले नन्हें फूल

—०—

[२१]

सुमन ! सुन एक हमारी बात

१

अपने लिये पराग न रख तू
उसका स्वाद स्वयं मत चख तू
औरों की संध्या को दे दे अपना मधुर प्रभात
सुमन ! सुन एक हमारी बात

२

अपने को सम्पूर्ण लगा कर
औरों की अपूर्णतायें हर
स्वार्थों की उत्पत्ति सदा ही करती है उत्पात
सुमन ! सुन एक हमारी बात

३

"मेरी आवश्यकता जब तक—
अनुभव करे विश्व यह तब तक
मुझे यहां रख" यही विनय कर ईश्वर से दिन रात
सुमन ! सुन एक हमारी बात

—०—

[२२]

अरे यह रंगत कितने दिन !

१

सुमन जानते हो सुन्दरता
जन्मी हैं लेकर अस्थिरता
उसमें सु-स्थिरता का होना कठिन ! महान कठिन !!
अरे यह रंगत कितने दिन !

२

कहने भर को दृश्य टिका है
पर हलचल के हाथ बिका है
परिवर्तन का नर्तन होता रहता है छिन-छिन
अरे यह रंगत कितने दिन !

३

छवि पाने का अचरज मानो
मत जाने का अचरज जानो
आना, जाने की घड़ियों को रहता है गिन गिन
अरे यह रंगत कितने दिन !

—०—

[२३]

सुन्दरते ! क्यों मदमाती हो

१

तुम सुन्दर जिसे बनाती हो
उसको ही फिर तज जाती हो
माना, वह मुरझा जाता है, पर तुम ही कब रह पाती हो
सुन्दरते ! क्यों मदमाती हो

२

यदि सुन्दर को अल्पायु मिली
तो तुम्हें कहां दीर्घायु मिली
अन्योन्याश्रम को विस्मृत कर अपनी ही हँसी कराती हो
सुन्दरते ! क्यों मदमाती हो

३

दीखी तो वस्तु कुरूप यहां
तुम दीख सकीं बिन वस्तु कहां
औरों का लिये सहारा हो फिर भी इतनी इतराती हो
सुन्दरते ! क्यों मदमाती हो

—०—

[२४]

जगत में किसका किससे प्यार

१

केवल रूप-रंग रहने तक
विषयों की तरंग रहने तक
यहां किया जाता है छल से मुँह-देखा व्यवहार
जगत में किसका किससे प्यार

२

कलिका में उभार आने पर
छबि-सौरभ अपार आने पर
आ जाते हैं मधु के लोलुप, कर "गुन गुन" गुंजार
जगत में किसका किससे प्यार

३

किन्तु उसी के कुम्हलाने पर–
रूप-रंग के उड़ जाने पर–
उड़ जाते हैं वे निर्मोही अपने पंख पसार
जगत में किसका किससे प्यार

—०—

[२५]

कुसुम ! तुम क्यों हो आज उदास

१

क्या कुम्हलाने से डरते हो
तब तो बड़ी भूल करते हो
बिना विनाश यहाँ होता है किसका नवल-विकास
कुसुम ! तुम क्यों हो आज उदास

२

"जग में आने को जाना है
खिल जाने को कुम्हलाना है"
यही सनातन-सत्य-नियम है, करो अटल-विश्वास
कुसुम ! तुम क्यों हो आज उदास

३

देखो दिनकर नित्य डूबता
अपने मन में नहीं ऊबता
प्रातः काल पुनः लाता है अपना विमल प्रकाश
कुसुम ! तुम क्यों हो आज उदास

—:०:—

[२६]

मनोरम सुमन ! खिलो फूलो

१

हरी भरी फुनगी छोटी पर
द्रुम की उन्नति की चोटी पर
तृप्त-हृदय-सी सांसें लेकर झूम झूम झूलो
मनोरम सुमन ! खिलो फूलो

२

पंखड़ियों का लघु तन पा कर
सौरभ का विस्तृत मन पा कर
वृन्त केन्द्र से वृत्त बढ़ा कर क्षितिज छोर छूलो
मनोरम सुमन ! खिलो फूलो

३

पर यों रूप-रंग पाने से
भव का वैभव बढ़ जाने से
कभी भूल कर भी अपने कर्ता को मत भूलो
मनोरम सुमन ! खिलो फूलो

—:o:—

[२७]

री मँहक! किधर तू बहक चली ?

१

तब तो कलिका में सुप्त रही
अति गूढ़-भेद-सी गुप्त रही
अब खुलकर चली खेलने को जब हृदय खोलकर खिली कली
री मँहक! किधर तू बहक चली

२

भू-तल से द्रुम, द्रुम से डाली--
डाली से फूलों की लाली
हो सकी पृथक न, अरे तू ही क्यों कुल में उच्छृंखल निकली
री मँहक! किधर तू बहक चली

३

हां, तू लोकोपकारिणी है
स्वर्गिक सुषमा प्रसारिणी है
तेरी उच्छृंखलता केवल कह सकते है इस लिये भली
री मँहक! किधर तू बहक चली

--०--

[२८]

वहां ऋतुराज नहीं जाता

१

जहां 'कुहू' के कल गानों को–
ठुकरा कर दुर्बुध - कानों को
"कांव कांव" का कोलाहल ही निशि दिन है भाता
वहां ऋतुराज नहीं जाता

२

जहां डाल से शूल जन्म ले
और उसी से फूल जन्म ले
किन्तु शूल से फूल बिंधा हो, रह रह अकुलाता
वहां ऋतुराज नहीं जाता

३

जहां पराग धूल में बिलखे
भोला भाव भूल में बिलखे
सुन्दर सोना, मिट्टी का भी मोल नहीं पाता
वहां ऋतुराज नहीं जाता

—०—

[२६]

वहीं ऋतुनायक आता है

१

जहाँ विश्व-सेवा में तत्पर
रह कर फिर पतझड़ से झड़कर-
पत्ता "पीला-पत्र" नियंत्रण का बन जाता है
वहीं ऋतु नायक आता है

२

जहां न मृदु-मधु होने पर भी
हरियाली के खोने पर भी—
चंचरीक सूनी डाली से स्नेह निभाता है
वहीं ऋतुनायक आता है

३

जहां धूल का भार उठा कर
जड़ तन में चेतनता ला कर
मूल-भाव ऊपर हरियाने को उमगाता है
वहीं ऋतुनायक आता है

—०—

[३०]

चेतो नन्दन बन के वासी

१

देखो सौरभ अकुलाता है
जी भर फैल नहीं पाता है
वातावरण इसी कारण है पाये घोर उदासी
चेतो नन्दन वन के वासी

२

कलियों के विकास पर बन्धन
सुमनों के सुहास पर बन्धन
इन्हें मुक्ति का दान करो हे अमृत-पुत्र अविनासी
चेतो नन्दन बन के वासी

३

भ्रम में भ्रमर पड़े बेचारे
इन के निश्चित बनो सहारे
पिक की कुहू कुहू में कर दो जगमग "पूरनमासी"
चेतो नन्दन वन के वासी

—०—

(३१)

मधुप ! कर उसी कुसुम से प्रेम

१

जिस की सज-धज छवि शाली पर
चिर-अनुराग भरी लाली पर
न्यौछावर होती है ऊषा ले कर अपना हेम
मधुप ! कर उसी कुसुम से प्रेम

२

जिस में दोष न विघ्न कहीं हैं
कोई कंटक-कीट नहीं हैं
सुरभीले-कौशल से बसती है नित कुशल-क्षेम
मधुप ! कर उसी कुसुम से प्रेम

३

जिसकी करुणा से यह-निर्जन
बन जाते हैं नन्दन-कानन
सार्थक और सफल हैं जिससे सारे साधन-नेम
मधुप ! कर उसी कुसुम से प्रेम

—०—

(३२)

भ्रमर ! क्यों फिरते हो भटके ?

१

जिस मकरन्द-हेतु अनुरागे
उत्कण्ठित हो हो कर भागे
वह न तुम्हारे लिये चला कुछ, रहा वहीं डट के
भ्रमर ! क्यों फिरते हो भटके

२

वह तो तुम बिन रह सकता है
सभी दशायें सह सकता है
तुम्हीं आत्म-रस भूल, चाह ले उससे हो अटके
भ्रमर ! क्यों फिरते हो भटके

३

अरे, अमर-रस पीना चाहो
तो अपना मानस अवगाहो
वहाँ अमृत से पूर्ण खिले हैं सरसिज-दल डटके
भ्रमर ! क्यों फिरते हो भटके

—०—

(३३)

तृप्ति में पुनः पान कैसा ?

१

पिया अनेकों बार पुष्प-रस
तो भी कहा न इच्छा ने "बस"
मधुप ! तनिक सोचो यह यति में गति-विधान कैसा ?
तृप्ति में पुनः पान कैसा ?

२

"अघा गये" का जो कि भान है
वह तो पीने की थकान है
पूर्ण-पूर्ति में न्यून-भाव का कहो भान कैसा ?
तृप्ति में पुनः पान कैसा ?

३

"कोई शेष न हो अभिलाषा"
यही अघाने की परिभाषा
शान्त-शयन में आकुलता का फिर उठान कैसा ?
तृप्ति में पुनः पान कैसा ?

—•०•—

(३४)

हमारे मधुवन के मधु-मास !

१

अब न कराओ और प्रतीक्षा
धीरज की हो चुकी परीक्षा
आशा भरे सजल नयनों में सीमाधिक है प्यास
हमारे मधुवन के मधु-मास !

२

दिन गिनने के लिए विकल-चित
करते रहे लकीरें हम नित
उनमें रेखा-चित्र तुम्हारा प्रकटा बिना प्रयास
हमारे मधुवन के मधु-मास !

३

दरश-तूलिका ले सतरंगी
उसमें रंग भरो चिर-संगी
अभिलाषा की पँखड़ियों पर छिटका दो मृदुहास
हमारे मधुवन के मधुमास !

०:—:०

(३५)

अब क्यों दूर दूर भगते हो ?

१

क्या तुम भगते हो इस भ्रम से
कि हम भटक जायेंगे तम से
अरे तुम्हीं तो अन्तराल में ज्योति लिये जगते हो
अब क्यों दूर दूर भगते हो ?

२

अमराई वाले अयनों से
पिक के अनुरागी नयनों से
देख चुके हम तुम को, जैसी शोभा में पगते हो
अब क्यों दूर दूर भगते हो ?

३

तुम्हें प्यार के सहित निहारा
क्या यह है अपराध हमारा
यदि है तो फिर तुम्हीं बताओ क्यों प्यारे लगते हो
अब क्यों दूर दूर भगते हो ?

(३६)

तुम्हारी यह मंजुल मुसकान

१

एक अलौकिक हाव लिये है
एक अलौकिक भाव लिये है
साथ साथ ही लिये हुये है एक रहस्य-महान
तुम्हारी यह मंजुल मुसकान

२

इसकी पावन प्रेम-कथायें
हाव-भाव की पूर्व प्रथायें
क्या जाने वे अलि जो केवल जान सके मधु-पान
तुम्हारी यह मंजुल मुसकान

३

कभी समझ लेते हैं 'हां' है
कभी समझ लेते हैं "ना" है
कर पाते हैं शीघ्र न निर्णय वे भोले अनजान
तुम्हारी यह मंजुल मुसकान

—०—

[३७]

जाओ, मैं प्यार नहीं करता

१

पहले तो तिल तिल तरसाया
फिर मधुर मधुर मधु सरसाया
शापित होकर वरदानों की अब मैं मनुहार नहीं करता
जाओ मैं प्यार नहीं करता

२

विपदा दे कर पतझड़ वाली
सूनी कर दी मेरी डाली
कोई अपने बैरी से भी ऐसा व्यवहार नहीं करता
जाओ मैं प्यार नहीं करता

३

मेरा सब कुछ लेते रहते
पर, दर्शन तो देते रहते
दर्शन देना भी हृदय तुम्हारा क्या स्वीकार नहीं करता
जाओ मैं प्यार नहीं करता

—०—

(३८)

दुखी मन ! सह ले दुख चुपचाप

१

पाटल ने बहु - कंटक पाये
पर, सबके हित सुमन खिलाये
प्रकटित किया कदापि न अपने अन्तर का अनुताप
दुखी मन ! सहले दुख चुपचाप

२

जिस कारण तू तप्त हुआ है
यदि उससे जग तृप्त हुआ है
तो शतवार सराहनीय है ऐसा कटु सन्ताप
दुखी मन ! सह ले दुख चुपचाप

३

जो दुख औरों का सुख बन कर
आता है निज - उर के भीतर
चिदानन्द में वह विलीन होता है अपने आप
दुखी मन ! सह ले दुख चुप चाप

—०—

(३६)

अरी झंझे ! मत यों झकझोर

१

झूम रही हैं मुकुलित कलियां
चूम रही हैं मधुपावलियां
कोमलता से देख किसी के भोलेपन की ओर
अरी झंझे ! यों मत झकझोर

२

मान लिया, तू है बल वाली
तुझसे कंपित डाली डाली
पर, आतंकवाद का भी तो आ जाता है छोर
अरी झंझे ! मत यों झकझोर

३

शक्ति मिली सेवा करने को
न कि यों जग में भय भरने को
अपने को ही दुख देते हैं अपने भाव कठोर
अरी झंझे ! मत यों झकझोर

—०—

(४०)

यद्यपि अलि तन के काले हैं
हां, इतना है विश्वास छली के तुल्य न मन के काले हैं

१

तुम सरसिज हो, सर सेजों पर
शोभित रहते हो निशि-वासर
ये कठिन काठ की कुटिया में भोगते कठोर-कसाले हैं
यद्यपि ये तन के काले हैं

२

ये "गुन गुन" कर तुम पर मरते
तुम मुँह से बात नहीं करते
अपमान उपेक्षा सह कर भी अपना सद्भाव संभाले हैं
यद्यपि ये तन के काले हैं

३

माना कि काठ ये काट सके
कठिनाई में न, रुके न थके
पर पँखड़ियों में बंधते ही हो जाते भोले भाले हैं
यद्यपि ये तन के काले हैं

४

तुम मुकुर-सरोवर में सुंदर
अपनी छवि हेर रहे जी भर
ये अपने मानस-दर्पण में प्रतिबिम्ब तुम्हारे पाले हैं
यद्यपि अलि तन के काले हैं

५

है गर्व तुम्हें सुघराई पर
पर ये भी तो रखते हैं उर
इन का घमंड क्या कम है, यदि ये तुम्हें चाहने वाले हैं
यद्यपि अलि तन के काले हैं

६

जग में होता यदि प्रेम नहीं
सौंदर्य न पाता मान कहीं
प्रेमी ने सुन्दर की छवि पर उपकार अमित कर डाले है
यद्यपि अलि तन के काले हैं

७

है शपथ तुम्हें अपनी छवि की
कुछ बात सुनो मेरे कवि की
आँखों की पुतली करो इन्हें, ये प्रेमी बड़े निराले हैं
यद्यपि अलि तन के काले हैं

—०—

(४१)

कुइलिया ! 'कुहू कुहू' मत बोल

१

जड़ रसाल को बौराने दे
उसमें पागलपन आने दे
तू चेतन बन बौराने का पीट रही क्यों ढोल
कुइलिया ! 'कुहू कुहू' मत बोल

२

पल भर रुक कर इस डाली पर
पल भर रुक कर उस डाली पर
संयम-हीन मनुज के मन-सी इधर उधर मत डोल
कुइलिया ! 'कुहू कुहू' मत बोल

३

भर न निराशातम गानों में
अब तो इन हताश कानों में
"राका राका" बोल बोल कर आशा का रस घोल
कुइलिया ! 'कुहू कुहू' मत बोल

०:—:०

(४२)

विहँस कर दिन-कर डूब चला

१

कुसुमों-सी घट चली लालिमा
भ्रमरों-सी बढ़ चली कालिमा
उडु-बुद् बुद् उपजाता तम में अम्बर डूब चला
बिहँस कर दिन-कर डूब चला

२

दिन भर चल कर परम शिथिल हो
सौरभ-भारों से बोझिल हो
सान्ध्य-शांति में मन्द-पवन का मर्मर डूब चला
विहँस कर दिन-कर डूब चला

३

जल से ऊपर पंखड़ियों में-
पंकज की मुँदती घड़ियों में
मधु की कुछ बून्दों के भीतर मधुकर डूब चला
बिहँस कर दिन-कर डूब चला

—०—

(४३)

अरे, ओ मन के विश्वामित्र !

१

सब से प्रथम विश्व पहचानो
विषयों की वस्तु-स्थिति जानो
बिन जाने विष में दीखेगा मोह-सुधा का चित्र
अरे ओ मन के विश्वामित्र !

२

देखो, कलियां खिलीं विहँस कर
प्रायः ऐसे ही अवसर पर
इन्द्र जाल के छल होते हैं माया-भरे विचित्र
अरे ओ मन के विश्वामित्र !

३

संयम-नियम पूर्णतः पालो
अपने को सब भांति संभालो
कहीं मेनका भ्रष्ट न कर दे तप-मय चारु-चरित्र
अरे ओ मन के विश्वामित्र !

—०—

(४४)

अखिल-सौन्दर्य

—०—

१

जीवन का गहरापन लेकर घटा उठी थी मतवाली
श्याम-व्योम में अपनी काया फैलाई काली काली
वैज्ञानिक बोले–'वारिद ने वारिधिसे पाया यह वेश'
हमको दीखे उस मोहन के घूँघरवाले काले केश

२

नभ-मंडल में जलद-पटल ने सूर्य-देव का दरस किया
रंग-रेलियां कर किरणों ने इन्द्र-धनुष को जन्म दिया
सबने कहा कि अम्बु-बिम्ब से सातों रंग हुये साकार
हमको दीखा वन-माली के श्याम वक्ष का मंजुल हार

३

झरने ने निशिदिन 'झर झर' कर जीवन-तत्व अशेष दिया
सरिता ने भी अविकल गति से 'कलकल' का सन्देश दिया
बोले लोग, 'सलिल टकरा कर अस्फुट शब्द रहा है खोल'
हमें सुन पड़े परदे में रहने वाले नटवर के बोल

४

सौरभ गरिमा में तन्मय मकरन्द मधुरिमा मिले हुये
विमल सलिल में पूर्ण-इन्दु से इन्दीवर थे खिले हुये
लोग कह रहे थे हँस हँस कर यह देखो पानी की दैन
हमको दीखे उस प्यारे के ज्योति भरे रतनारे नैन

५

ऊषा अरुणाभा से प्राची का सुहाग भरती आई
दानव के काले भावों-सा अन्धकार हरती आई
जगनेवाले जग ने जाना अँधियारी निशि का अवसान
हमको दीखी सुधा-सनी उस विश्व-विमोहन की मुसकान

६

मलयानिल कोमल कुसुमों से सुचि सुगन्ध लेता आया
प्रकृति-प्रिया के हृदय-देश को संचालन देता आया
विचरण-शील मनुज समझे थे वायु-लहरियों का सु-विलास
हमने जाना जीव-मात्र के जीवन-धन का सुरभित श्वास

७

रत्नाकर कहलाने वाले सागर और महासागर
घेरे धरा तीन चौथाई लहर रहे थे सुन्दर-तर
विस्तृत क्षेत्र निहार अज्ञ-से भूगोलज्ञ रह गये दंग
हमने देखी 'दया-सिंधु' के दया-सिंधु की एक तरंग

—०—

[१]

यह है किस का पूजोपचार ?

१

देता है अर्घ्य विमल निर्झर
चरणों को धोता है सागर
नहलाता है सुन्दर जलधर दे कर नन्हीं नन्हीं फुहार
यह है किसका पूजोपचार ?

२

चलता है हौले मलय-पवन
झलता है सुरभित सुखद व्यजन
उपवन के अनगिन खिले सुमन, पहनाते हैं रमणीय-हार
यह है किसका पूजोपचार ?

३

कर के अपना शीतल तन-मन
राकेश चढ़ाता है चन्दन
आरती उतार रहा दिनमणि लेकर अपनी आभा अपार
यह है किसका पूजोपचार ?

—*—

(२)

शांति बन जाते हो समाधि-मंदिरों की कहीं
मंदिरों की आरती का शोर बन जाते हो
ध्यान करने से कहीं ध्यान में न आते कहीं
भक्त-मुख-चन्द्र के चकोर बन जाते हो
'शिशु' पूजा-जाप से पिघलते नहीं हो' कहीं
प्रेम ही से प्रणय विभोर बन जाते हो
कहीं भोले बन आप ही हो लुट जाते, कहीं
चित्त को चुरा के चित्त-चोर बन जाते हो

—:०:—

[३]

चलो, शुक ! चलें पिया के देश

१

पंख व्योम में उड़ने को हैं
न कि यों विवश सिकुड़ने को हैं
पाँच तीलियों के पिंजड़े में बाँध लिया क्यों वेश ?
चलो शुक ! चलें पिया के देश

२

सोचो तनिक, तुम्हीं बन्दी बन
बन्धन को देते हो जीवन
तुम न बँधो तो फिर बंधन में रहता है क्या शेष ?
चलो शुक ! चलें पिया के देश

३

तुम ने है जो वस्तु बनाई
उसको कौन मिटावे भाई !
स्वयं मिटा कर उसे मुक्ति से पाओ मुक्ति विशेष
चलो शुक ! चलें पिया के देश

०:—:०

[४]

किससे कहूँ कहानी अपनी

१

निठुर-जगत कब सुन सकता है
क्यों कर मन में गुन सकता है
करता है जब वह अभिमानी नित मनमानी अपनी
किससे कहूँ कहानी अपनी

२

जिसके पैर न जाय बिवाई
वह क्या जाने पीर पराई
उसने तो पीड़ित की पीड़ा क्रीड़ा जानी अपनी
किससे कहूँ कहानी अपनी

३

देख देख कर परम दुखित चित
सब परिचित हो गये अपरिचित
केवल बनी रहीं विपदायें चिर-पहचानी अपनी
किससे कहूँ कहानी अपनी

—०—

[५]

अपने दाता को पहचान

१

जब तू चातक बन कर आया
'पिया पिया' का शोर मचाया
तब किस घन ने तुझे किया था स्वाँति-बूँद का दान
अपने दाता को पहचान

२

जब तू धरे हंस की काया
दाने दाने को ललचाया
तब किस मानस ने तुझ को वे मुक्ता दिये महान
अपने दाता को पहचान

३

जब तू भ्रमर बना भरमाया
नित चक्कर पर चक्कर खाया
तब किस सरसिज ने करवाया तुझे सरस-मधु-दान
अपने दाता को पहचान

—०:※:०—

[६]

क्यों सिहर रहे शंकाओं से ?

१

माना अतीत विपरीत गया
तो भी बेचारा बीत गया
मन को क्यों दुखी बनाते हो ! उसकी बीती सत्ताओं से ?
क्यों सिहर रहे शंकाओं से ?

२

जो आगे आने वाला है
वह किसका देखा भाला है
चित को चिन्तित क्यों करते हो यों आगामी-चिन्ताओं से
क्यों सिहर रहे शंकाओं से

३

जो कल, कल था वह आज नहीं
जो कल होगा वह आज नहीं
फिर एक "आज को किये विकल क्यों दो 'कल' की द्विविधाओं से
क्यों सिहर रहे शंकाओं से

—:०:—

[७]

कुपथ पर चलो न प्यारे चरण

१

"तुम हो भार उठाये तन का
तन है भार सँभाले मन का
मन है बोझ धरे जीवन का", करो न यह विस्मरण
कुपथ पर चलो न प्यारे चरण

२

यदि न तुम्हारी उच्च चाल हो
तो उन्नत किस भाँति भाल हो
फिर तो गहन-गर्त्त में होगा लक्ष्य-प्राप्ति का हरण
कुपथ पर चलो न प्यारे चरण

३

तुमको तो अभीष्ट पाना है
जाने की इति तक जाना है
क्यों न हितू बन कर के अपने, लो सत्पथ की शरण
कुपथ पर चलो न प्यारे चरण

—०—

[८]

बुरे हम कैसे मानें क्लेश

१

मृग-तृष्णा के जल की नाईं
भरमाती जग-सुख की झाईं
उस से पिण्ड छुड़ा देते हैं दे कर विरह विशेष
बुरे हम कैसे मानें क्लेश

२

दूर हटा कर सारा संशय
भरते हैं चित में दृढ़ निश्चय
करते हैं कृतकृत्य नित्य प्रति कर उपकार अशेष
बुरे हम कैसे मानें क्लेश

३

वास्तव में स्वलक्ष्य पाने को
चिदानन्द-मय हो जाने को
क्लेश हमारे प्यारे के हैं प्यार-भरे सन्देश
बुरे हम कैसे मानें क्लेश

—०—

[९]

सुन री बूँद ! मेरी बात

१

तू थी सिन्धु—मध्य असीम
हो कर पृथक हुई ससीम
इस से हीन बन कर आंसुओं से कर न गीला गात
सुन री बूँद ! मेरी बात

२

लघुता की भुला दे पीर
अपने हृदय में धर धीर
होता है पुनः उत्थान अन्तिम पतन के पश्चात
सुन री बूँद ! मेरी बात

३

तू ने यह महीतल तप्त—
नभ से गिर किया है तृप्त
सौ उत्कर्ष हैं बलिहार तेरा देख एक निपात
सुन री बूँद ! मेरी बात

०:—:०

[१०]

तीन प्रश्नोत्तर

१

मैंने कहा कि 'हे जल पति! तुम थल–पति भी कहलाते हो
दाबी भूमि तीन चौथाई, मोद भरे लहराते हो
मुझे अचम्भा हो आया है, समझ तुम्हारी गहराई
सचमुच तुम ने गहराई में विश्व–विजयिनी जय पाई

अगम सिन्धु बोला 'क्या समझो–
आखिर शिशु ही तो ठहरे!
सत्पुरुषों के हृदय मिलेंगे
मुझ से कहीं अधिक गहरे'

२

मैंने कहा कि "हे भू–धर! तुम गुरुता से मदमाते हो
धरती तुम को धरती है पर भू–धर तुम कहलाते हो
वज्र—अंग ले कर के अपना ऊँचा शीश उठाते हो
ऊंची चोटी से ऊंचे नभ को नीचा दिखलाते हो"

गिरि बोला "मेरा ऊंचापन
उथले जल का गोता है
धीमानों का पूज्य परमपद
मुझसे ऊंचा होता है"

३

मैंने कहा कि " हे व्यापी नभ ! तुम अति विस्तृत फैले हो
भूमि, उपग्रह, ग्रह भरने के एक अनोखे थैले हो
सारा सौर—जगत कक्षा में मूक बना चकराता है
इस विशालता से मेरा मन विस्मय से भर जाता है "

नभ बोला " निष्पक्ष हृदय को
मुझ से भी अतोल समझो
उस के सु-यश नगाड़े की तुम
केवल मुझे पोल समझो"

—०—

(११)

शिशु

१

पाँचों-तत्वों में अखिल-सृष्टि के संचालक सामान चले
जग की जननी के जनने के हँसते साकार-विधान चले
शैशव, यौवन, वृद्धावस्था
के तीन पगों में पृथ्वी को–
नापने हेतु कौतूहल से भोले बावन भगवान चले
माता बनने की इच्छा को
मिल गया स्वर्ग का विशद-दान
जीवन-ऊषा का खिला हुआ
रे कमल ! रहे तू भाग्य वान !

२

साधक समाज के परम-हंस ! रेकिनि के धूल भरे हीरे !
मरु-थल के लहराते सागर ! घुटनों के बल धीरे धीरे !
तेरे नन्हें से कन्धों पर
भारी गोवर्धन धरने को
भारती यशोदा ढूँढ़ रही है आज तुझे यमुना-तीरे
तुझ को गोदी में लेकर के
पा लेती है वह स्वाभिमान
जीवन–ऊषा का खिला हुआ
रे कमल ! रहे तू भाग्यवान !

३

तेरे नभ-गृह का रवि-मंडल सन्ध्या से हुआ न काला है
तेरा शशि राहु अमावस से न कभी भय खाने वाला है

लू लपट, शीत, बौछारों से
हैं बचा वायु-मंडल तेरा

हम लोगों की इस दुनिया से तेरा संसार निराला है

दावा से दग्ध-विपिन में तू
करता है मधु-वन का विधान
जीवन-ऊषा का खिला हुआ
रे कमल ! रहे तू भाग्यवान !

४

रे शिशु! इस शापित भूतलको स्वर्गिक आशिष दिलवाये जा
भूली भटकी मानवता को देवों का पथ दिखलाये जा

जो रुला रुला कर दुखियों के
आंसू पैरों से मलते हैं

उन के बहरे कानों को तू मानव सन्देश सुनाये जा

तेरा आदर्श हरे जग का
सब भेद भाव मिथ्याभिमान
जीवन ऊषा का खिला हुआ
रे कमल ! रहे तू भाग्यवान

—०—

(१२)

मैं

१

कोरे सपनों से प्यार नहीं मैं करता
छल-छाया पर अधिकार नहीं मैं करता
मैनका छलेगी क्या मेरे कौशिक को
दो हृदयों का व्यापार नहीं मैं करता
आकर्षक-शशि से परे अमावस्या हूँ
क्या क्या बतलाऊँ तुम्हें कि मैं क्या क्या हूँ?

२

जिस जग में चरणों के चेरे रहते हैं
उसमें कोई मित्र न मेरे रहते हैं
चिर-स्वच्छ तथा स्वच्छन्द वायु मंडल में
मेरे विचार मुझको घेरे रहते हैं
मैं अपने निर्जन-वन की जन संख्या हूँ
क्या क्या बतलाऊँ तुम्हें कि मैं क्या क्या हूँ?

३

यद्यपि झंझा को दुख देते पाओगे
पर मुझ को नैया खुद खेते पाओगे
आवर्तों में भी मेरी आकुलता को
आश्वासन की सांसें लेते पाओगे
मैं आप खिवैया और आप नैया हूँ
क्या क्या बतलाऊँ तुम्हें कि मैं क्या क्या हूँ?

४

विपदायें वक्ष-स्थल से टकराती हैं
अपना सा मुंह ले लौट चली जाती हैं
फिर मलयानिल की मृदुल-लौरियां मुझ को
सुहलाती, दुलराती, गाती आती हैं
मैं शर-शय्या पर सजी सुमन-शय्या हूँ
क्या क्या बतलाऊं तुम्हें कि मैं क्या क्या हूँ

५

रोगी ने मुझको कहा 'मानसिक रोगी
भोगी बोला 'इसकी शुचि मति क्या होगी?
जब पद्म पत्र सा मानस से मैं खेला
बिरही जग मुझ को कह बैठा संयोगी
मैं मूढ़ जीव के लिये बूझ विद्या हूं
क्या क्या बतलाऊँ तुम्हें कि मैं क्या क्या हूं

६

अनजान विश्व मुझको कायर कहता है
उलटी सीधी धुनि धारा में बहता हैं
पर मेरे उच्छृंखल उद्वेगों का दल-
मेरे अनुशासन का बन्दी रहता है
मैं गूढ़ाशय हूं स्वयं, स्वयं व्याख्या हूं
क्या क्या बतलाऊं तुम्हें कि मैं क्या क्या हूं

—०—

(१३)

द्विविधा

—०—

द्विविधा में है चित्त हमारा किसको ले लें किसे न लें
'दीन-बन्धु' की ओर चलें या दीन-बन्धु की ओर चलें ?

१

उधर लिखा है क्षीर-सिंधु के अंग उमड़ते फिरते हैं
इधर दूध की एक बूँद हित सौ सौ आंसू गिरते हैं
किसकी लहरों से हिल मिल लें
किस की आहों से जल लें
दीन-बन्धु की ओर चलें या दीन-बन्धु की ओर चलें

२

सिंहासन पर सुंदर पंखा लटक रहा क्या ही प्यारा
सुख से सौ गज दूर पड़ा मजदूर हाँफता बेचारा
किसे तपन में तपने दें हम
किस के ऊपर व्यजन झलें
दीन-बन्धु की ओर चलें या 'दीन बंधु' की ओर चलें

३

उधर भरे पकवान जग रही अकर्मण्यता की धूनी
इधर झोपड़ी बिलख रही है अँधियारी, भूखी, सूनी
किस की भस्म मलें मस्तक पर
किसका बन कर दीप जलें
दीन-बंधु की ओर चलें या 'दीन-बंधु' की ओर चलें

४

एक ओर उपवास-दिवस में, "माल छको" ऐसा मत है
एक ओर जीवन भर एकादशियों का निर्जल-व्रत है!

किस सुर-पुर के भीतर जायें
किस रौरव से बच निकलें

दीन-बन्धु की ओर चलें या 'दीन-बन्धु' की ओर चलें

—०—

(१४)

मानव, दानव क्यों बना आज !

१

कोमल मन वाला पुष्प कहीं
कंटक बन कर के चुभा नहीं
फिर अमृत-पुत्र ही किस कारण विष की बूँदों में फंसा आज ?
मानव दानव क्यों बना आज !

२

युग युग का वह मधु-मय संचय
क्यों लुटा रहा पल पल असमय
क्यों अधःपतन की ओर गमन करता है उन्नत-मना आज ?
मानव, दानव क्यों बना आज !

३

तब दूध पिया था माता का
अब रक्त पी रहा भ्राता का
बन्धुता तथा निर्ममता में संग्राम कठिन क्यों ठना आज ?
मानव, दानव क्यों बना आज

—•—

[१५]

कवि से—

—०—

१

अंगारे भर भर कर रक्खे अपने शब्दों के मानी में
लेखनी नुकीली लेकर डाले अस्त्र-शस्त्र हैरानी में
साम्राज्य-रवचको एक पहाड़ी—
चूहे से कटवा करके
मुरझाये कमल खिलाये तुमने तलवारों के पानी में
बन करके 'भूषण' 'चन्द' करो
साहित्य--कोष दैदीप्यमान
मानवना जिससे जाग उठे
गा दो ऐसा जागरण–गान !

२

मानिनी मनाने में कविवर ! जननी का दूध न लजवाओ
है छिड़ा महाभारत भारत में, आओ डंका बजवाओ
तुम बनो पुरोहित क्रांति-यज्ञ—
के, शांति–चित्त से पाठ पढ़ो
अब तक नायिका सजाई है, अब सेना-नायक सजवाओ
हम समझें अपनी आन बान
प्राणों से बढ़ कर मूल्यवान
मानवता जिससे जाग उठे
गा दो ऐसा जागरण-गान!

३

जो कुचले गये केचुओं-से, उन के दो पंख लगा देना
ठंडा लोहू खौलाने वाला अनल गान फिर गा देना
मिट जाने वाली घड़ियों का
शाश्वत से गठबंधन करके
सदियों से सोये मरघट में जीवन की ज्योति जगा देना
मूर्छित को देना नवल स्फूर्ति
धड़कते हृदय को अभय दान
मानवता जिससे जाग उठे
गा दो ऐसा जागरण-गान

४

मरु-थल की मृग-मरीचिकाओं में अगम-सिन्धु ही घहरा दो
आँसू से गीले-क्षेत्रों में विप्लव की लहरें लहरा दो
झंझानिल के झकझोरों ने
जिनको झपटा, झकझोरा है
उन झीनी-सी झोपड़ियों पर भारती-पताका फहरा दो
निज आनबान का ध्यान सदा
ऊँचा उठ उठ कर ले उड़ न
मानवता जिससे जाग उठे
गा दो ऐसा जागरण-गान

५

छालोंसे दुखते चरणोंपर अकड़ा अभिमानी-ताज गिरे !
दीवानोंकी बलिवेदी पर सब उदय-अस्तका राज गिरे !

ऐसा भू-कम्प मचे, प्राची–
ऊषा का मुँह तमतमा उठे
निष्ठुर-समाजके राजकाज पर आज गरजती गाज गिरे

नव-युग में काया-कल्प करें
क्या अवनीतल, क्या आसमान
मानवता जिससे जाग उठे
गा दो ऐसा जागरण गान

—*—

[१६]

लक्ष्मी-पतियो

१

तुमने लक्ष्मी पूज पूज कर अपना ही आनन्द किया
सम्पति के बिखरे प्रकाश को तहखानों में बन्द किया
"चार दिये, दस लिये," इस लिये घी के दिये जलाये खूब
समझ न पाये इन किरणों में कितने सूर्य गये हैं डूब

२

चौराहे पर अन्धकार में पथिक अनेकों टकराये
और तुम्हारे अनगिन दीपक घर में घुसकर मुसकाये
सँभले रहना, उन झोंकों से, जिनकी रोक रहे हो राह
वे आँधियारी पर्ण-कुटी में बन बैठे हैं "आहत-आह"

३

"माँ रोटी" का रोर वज्र-सा कानों को हन देता है
और तुम्हारी भरी खत्तियों को घुन खाये लेता है
याद रहे बुझते चूल्हों में जाग उठी है भीषण आग
विष-मय वातावरण करेगा संपति का यह 'विषम विभाग

४

अभी समय है, दीन बन्धु की सेवा के मिस भक्ति करो
विकल अस्थि पंजर के भीतर जीवन के जीवाणु भरो
मनुज मात्र के सर्व-हितों के ऐक्य रूप का रक्खो ध्यान
इस प्रकार से समुदित होंगे, लक्ष्मी, लक्ष्मीपति भगवान

—०—

[१७]

प्यारे भारत देश ! नमस्ते !

१

शुभ्र हिमालय जटा पसारे
विन्ध्याचल कटि वस्त्र सँवारे
सिंध सुरधुनी ब्रह्मपुत्र का
परम पवित्र जनेऊ धारे
मन की मनन क्रिया के साधन
हे पावन मुनि-वेश, नमस्ते !
प्यारे भारत देश नमस्ते !

२

मान रहा जग श्रेय तुम्हारा
सचमुच है गुण गेय तुम्हारा
भूतकाल से वर्तमान को
शिक्षित करना ध्येय तुम्हारा
अतुल अतीत जताने वाले
हे अब के अवशेष, नमस्ते !
प्यारे भारत देश नमस्ते !

३

निधियां तुम्हें दुलार रही हैं
मोती मूँगे वार रही हैं
आदि-काल से रत्नाकर की
लहरें चरण पखार रही हैं
सम्पति-जन्य अनन्य प्रभा से
धन में धन्य धनेश, नमस्ते !
प्यारे भारत देश ! नमस्ते

४

राहु अनेकों चढ़ कर आये
क्रोधित होकर बढ़ कर आये
किन्तु सुधाके विन्दु प्रथम ही
डटने का प्रण पढ़ कर आये
सत्य सुयशके धवलित प्रतिनिधि
राका के राकेश नमस्ते !
प्यारे भारत देश नमस्ते !

—०—

[१८]

बंदी का सपना

—०—

१

"ज्वाला मुखी दमन का थक कर शान्त-रूप से है ठण्ढा
निरपराध खोपड़ी तोड़ने वाला टूट गया डंडा
हिन्द महासागर के जल तक अपनी साया फैलाकर-
उच्च हिमालय की चोटी पर फहर रहा अपना झंडा—

२

"बदल गई है हवा घरों की, कोई कष्ट न सहता है
न्या वायु-मंडल ऊपर उठने की बातें कहता है
झंझा की प्रतिक्रिया संभल कर करने वाला मलयानिल
लोगों की सासों में हो कर गांव गांव में कहता है-

३

"श्वेत यशस्वी खेत कपासी खिलखिल कर लहराते हैं
चरखे के धागे भारत की सीमा प्रौढ़ बनाते हैं
काम, दाम का उचित विभाजन श्रमजीवी समाज में है
मुदित किसान चलाते हैं हल, गीत सुहाने गाते हैं-

४

"लोग वेद-मन्त्रोंको चरखे की गुंजन में गाते हैं
गायत्री में भारत-मां की अनुपम-महिमा पाते हैं
दयानन्द गांधी अछूत बालक के सिर पर हाथ धरे
अपना होने के नाते उसको अपनाते आते हैं"

५

शीश झुकाते आंख खुल गई, खुलीं आंसुओं की लड़ियां
बन्दी गृह का द्वार बन्द था हाथों में थीं हथकड़ियां
लौह-सींकचे अड़े खड़े थे दीवालों का घेरा था
सांसें गिनती थीं रह रह कर पराधीनता की घड़ियां

६

जिसे मुक्ति के अन्वेषण में दृढ़ बन्धन साकार मिला
जिसे न्याय के उचित मार्ग में अनुचित अत्याचार मिला
"सत्य शिवं सुदरम्" की रचना में जिसको कष्ट मिले
उस बन्दी को हाय ! न अपने सपने पर अधिकार मिला

—०—

[१६]

अन्तिम-अभिलाषा

१

सूखा फन्दा आज गले से लग कर कुछ गीला होगा
सम्भव है इससे तेरा दृढ़-बन्धन कुछ ढीला होगा
स्वयं लटक कर रस्सी से तेरे भारों को हरता हूँ
किंचित चिंतित-चित्त नहीं हूँ शांत भाव से मरता हूँ

२

मेरा मृत-शव उन को देना जो झूलें इन झूलों को
मेरे फूल उन्हीं को देना जो अपनायें शूलों को
मेरी भस्म उन्हीं को देना जो जलता-सी पहचानें
मेरी याद उन्हें दिलवाना जो अपनी भूलें मानें

३

जो जीते जी मरे हुये हैं उनसे यह मरना कहना
मेरी चिता जला कर उनका लोहू खौलाते रहना
क्या कर्त्तव्य-कर्म है उनका यह सब उनको जतलाना
सेवा-पथ में इस रस्सी को स्वर्ग-नसेनी बतलाना

४

दीख रहा है इतना सुन्दर विस्तृत जो स्वदेश प्यारा
अहो महा मातः ! वह तेरी ही विराट-वपु है सारा
उसकी सेवा में मिट कर के तन केवल यह फल पाये
उष्ण-रक्त से अवनीतल पर "जय स्वदेश जय" लिख जाये

५

आत्मास्तित्व-अंशुमाली का अस्ताचल है कहीं नहीं
मृत्यु-घटायें उसके नभ में कहीं टिकाऊ रहीं नहीं
पंच-तत्व के सम्मिश्रण से वह शरीर पा लेता है
कालान्तर में नियत-नियम से फिर उसको तज देता है

६

सदा रहेगा पंच-तत्व का ऐसा ही ताना बाना
सदा रहेगा। जीवन-पथ में ऐसा ही आना जाना
जननि ! धैर्य धर, देह बदलने की केवल देरी होगी
पुनर्जन्म को पाकर मुझ से फिर सेवा तेरी होगी

०:—:०

(२०)

आशे !

१

गहन-मृत्यु में नव-जीवन का परम-पवित्र प्रकाश किया
बाधाओं के ठोस-पिण्ड में एक शून्य आकाश किया
उलझन वाले कार्य-क्षेत्र में निष्कण्ठक अवकाश किया
महानाश की तैयारी का अथ से इति तक ह्रास किया
घोर निशा के अंधकार को
उज्ज्वलता का वेश दिया
आशे ! तुमने दग्ध-विपिन को
मधुवन का सन्देश दिया

२

सुभगे ! सूनी गोदी में तुम नन्द लला हो कर आँई
ठुकराये कुरूप पत्थर में मूर्ति कला हो कर आँई
भादों के मेघाच्छादित नभ में चपला हो कर आँई
"कुहू कुहू" से व्यथित नीड़में चन्द्र कला हो कर आँई
धड़कन वाले भीरु हृदय को
सिंहों का आवेश दिया
आशे ! तुमने दग्ध विपिन को
मधुवन का सन्देश दिया

३

भद्रे ! तुमको पाकर फिर से निर्जन-वन बसते देखा,
खारे अश्रु बिन्दुओं को फिर मुसकाते हँसते देखा,
विकल-सीप के मुक्ताओं को धागे में गँसते देखा,
ढीले पड़े अबल हाथों को फिर कटि पट कसते देखा,
पंगु-चरण को क्षितिज-देश तक
जाने का आदेश दिया
आशे ! तुमने दग्ध-विपिन को
मधुवन का सन्देश दिया,

४

प्रिये ! तुम्हारे आकर्षण में कितने प्राणी छले गये,
गीले-फन्दों के चक्कर में कितने सूखे गले गये,
पतझर से पीड़ित होकर वे अपने तरु से फले गये,
पुनर्जन्म के आश्वासन पर हंसते हंसते चले गये,
भूतल के प्रदेश के बदले
उनको स्वर्गिक-देश दिया
आशे ! तुमने दग्ध-विपिन को
मधुवन का सन्देश दिया

०:—:०

[२१]

ओ बापू !

१

मानवता के, स्वतन्त्रता के रक्षक और सहारे,
पुतली-बाई-सी भारत-मां की आंखों के तारे,
तुमने "वीर-विहीन-मही" की कलुष कालिमा धोदी
तुमको पाकर धन्य हुई है परवश-मां की गोदी,

२

सत्य-अहिंसा से हिंसा की असफलता करवाई
आत्म-तेज से भस्म-राशि में फिर धूनी चेताई
प्राची के प्रांगण में ऊषा की लाली प्रकटाई
सदियों के शून्य श्मशान में जीवन-ज्योति जगाई

३

ढूँढ़ा नहीं काम को तुमने, तुम्हें काम ने ढूँढ़ा
नगरों की क्या कहें तुम्हें तो ग्राम ग्राम ने ढूँढ़ा
अकर्मण्य हो, प्रभु-पूजन की शैली तुम्हें न भाई
'दीन-बन्धु' की झांकी तुमने दीन बन्धु में पाई

४

क्रांति--पक्ष के "होता" हो तुम अति ही अनुरागे-से
पंचों की जंजीरें तोड़ी तकली के तागे से
तज कर खांड, नमक से तुमने दिखलाई हमदर्दी
लटी लंगोटी से बिचलाई कसी-कसाई वर्दी

५

बन्दीगृह के मन्दिर में की मन से घोर तपस्या
जनता--रूप जनार्दन को सुलझाई जटिल समस्या
सामाजिक-संगठन हेतु भी बहुत-कौशल दिखलाये
'हरिजन' होने के नाते से सब हरिजन अपनाये

६

जो सक्रिय-अध्यात्मवाद था "मसारीक" को प्यारा
तुम पहले से खोले बैठे हो उस का गुरु--द्वारा
अनासक्ति के योग-रूप में तुम ने गीता देखा
वर्तमान-सामाजिक--पट पर खींची अद्भूत रेखा

७

ईश्वर करे कि बापू! तुम हो बिपुल आयुबल वाले
मंत्र तुम्हारा दास्य--पाश के खंड खंड कर डाले
परम स्वतंत्र वायु--मंडल में भारत सांसें लेवे
स्वावलम्ब से अपनी नैया अपने हाथों खेवे

—(*)—

१

जीव अनेकों में रमे, यद्यपि हो तुम एक
नाथ ! तुम्हें कितने कहें, एक कहें कि अनेक ?

२

किस के बूते छोड़ दें, ईश ! तुम्हारी टेक
रवि को कमल अनेक हैं, कमलों को रवि एक

३

रे जग--पथ के पथिक ! तू तज विलास के चाव
सरल डाल ही लौट कर, होगा कठिन चढ़ाव

४

जग में जग कर सजग रह, अपने चारों ओर
चुरा न लें यह सुमति-धन, कुविचारों के चोर

५

आगा पीछा देख कर, ऊंचा रक्खो शीश
पथ पर बायें से चलो, दायें होंगे ईश

६

मेले कान दो, एक मुंह, इस का यही विवेक
तब दो बातें सुन चुको, तब फिर बोलो एक

७

प्रभो ! हमें करना न शशि, ग्रहण-भीरु सकलंक
हम छोटे तारे भले सब प्रकार निःशंक

८

पवन-दूत को है यही पुष्पों का आदेश
देश देश देते फिरो सुरभि भरा सन्देश

९

धरती पर तो धूल है, डाली पर है शूल
दुहरे दुश्मन लग रहे, एक अकेला फूल

१०

फूल ! न फूलो गर्व से, अब भी समझो भूल
उसके हँसने में झरे, तुमसे अनगिन फूल

११

रे गुलाब ! निज वंश पर, तू इतना मत फूल
जिस डाली में फूल हैं उसी डाल में शूल

१२

अत्याचारी ! समझ ले, अब भी अपनी भूल
कहाँ दमन की डाल में, लगे अमन के फूल

१३

रहें कुश—लता युक्त वे, जिनको मां से द्रोह
रहें कुशलता युक्त वे, जिनको मां से मोह

१४

जो चाहो अमरत्व के, फल का सुन्दर स्वाद
तो बन आओ चाव से, राष्ट्र बेलि की खाद

१५

मातृ भूमि को नित यही, लगी हुई है आस
बहनें हों दुर्गावती, भाई दुर्गादास

१६

है अब भी भारत वही, यद्यपि है न विशेष
चरण उठ गये रह गए चरण चिन्ह अवशेष

१७

काट रहा है मौज से, अपने दिन संसार
क्या भारत में ही हुआ, कलियुग का अवतार

१८

रे तरु वर ! क्यों रो रहा, तू मल मल कर हाथ
तेरा ही तो काठ था, उस कुठार के साथ

१९

अभी जला ले काठ को, ए री ज्वाल ज्वलन्त !
हो जायेगा अन्त में तेरा भी तो अन्त

२०

हे गोरे शशि ! है तुम्हें, अति प्रिय काला रंग
क्या जानो, तुम विश्व की, राजनीति के ढंग

२१

उस तकली की शक्ति का किसे मिलेगा पार
जिसके कच्चे तार से हिलता है संसार

२२

मातृ भूमि के नाम पर नाथ रहो अनुकूल
उसके पथ के शूल सब, कर दो कोमल फूल

२३

सदा किसानों से लगा, कर कर के हैरान
किसने हाय ! लगान का, रक्खा नाम "लगा न"

२४

इधर अश्रु की धार है, उधर शस्त्र की धार
कैसे दुहरी धार में, होगा बेड़ा पार

२५

रे नाविक ! जाने तभी, तेरा शक्ति प्रभाव
जब प्रतिकूल बहाव के ले जाये तू नाव

२६

पिक से बढ़ कर जिस बाग में, हो कौवों का मान
उस नन्दन बन से भला मरघट या वीरान

—*—

हिन्दी हिन्द देश की वाणी

१

उर के उँमगें उद्गारों को
मानस के आद्रित प्यारों को
कलित-कंठ के द्वारा प्रगटित करती है कल्याणी
हिन्दी हिन्द देश की वाणी

२

जैसा लिखना वैसा पढ़ना
रक्खा कहीं न घटना बढ़ना
जिस से सभी मनोवैज्ञानिक सुविधा पावें प्राणी
हिन्दी हिन्द देश की वाणी

३

आर्यावर्त मुकुट धारी हो
चक्रवर्ति भू-पति भारी हो
भारत भूमि राज माता हो, हिन्दी भाषा रानी
हिन्दी हिन्द देश की वाणी

—०—

-: स मा प्त :-